कृष्णयजुर्वेदीय

तैत्तिरीयोपनिषद् सटीक

अनुवादक-

रायबहादुर बाबू जालिमसिंह

तृतीयबार

लखनऊ

केसरीदास सेठ द्वारा

नवलकिशोर-प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित

सन् १९२५ ई०

भूमिका

वेदव्यासजी के शिष्य वैशंपायनऋषि के पास याज्ञवल्क्य आदिक विद्यार्थी ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण किये हुये यजुर्वेद का अध्ययन करते रहे, उस वैशंपायनऋषि को किसी एक निमित्त करके ब्रह्म-हत्या प्राप्त हुई, उस हत्या के निवारणार्थ वैशंपायनऋषि ने याज्ञवल्क्य से इतर अपने शिष्यों से नियमाचरण अर्थात् प्रायश्चित्त कर्म करने की आज्ञा दी, तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि हे भगवन् ! यह व्रत अतिकठिन है, इन दुर्बल बालक विद्यार्थियों से अशक्य है, मैं परिपक्क और शरीर करके दृढ़ हूँ, मैं अकेला ही इस कठिन व्रत को करके आपकी ब्रह्म-हत्या निवारण करने में समर्थ हूँ अतएव इस कठिन व्रत के करने की आज्ञा मुझको ही दीजिये, इस प्रकार जब याज्ञवल्क्य ने अपने गुरु वैशंपायन से विनय किया, तब वह ऋषि ब्रह्म-हत्या के वश होने के कारण क्रोधित हो, ऐसा कहता भया कि हे याज्ञवल्क्य ! तू बड़ा गर्विष्ठ है, अपने को श्रेष्ठ मानता है, और इन बेचारे ब्राह्मण के बालक विद्यार्थियों का अपमान करता है, अब तू मुझसे पढ़ी हुई विद्या को शीघ्र त्याग दे, नहीं तो तुझको मैं मरण-संबंधी शाप दूँगा। जब इस प्रकार वैशंपायनऋषि ने कहा, तब शाप के भय से भयभीत हो, याज्ञवल्क्य गज-क्रिया के बल से वमन करके अध्ययन की हुई विद्या को त्यागता भया, तब उस त्यागी हुई विद्या को अन्य कई एक ब्राह्मण के बालक विद्यार्थियों ने तीतुर का रूप धारण करके अपने गुरु की आज्ञा से ग्रहण कर लिया, तभी से उस विद्या का नाम तैत्तिरीय विद्या पड़ा, उस तैत्तिरीय विद्या अथवा शाखा का यह उपनिषद् भी तैत्तिरीय-उपनिषद् करके विख्यात है, इस उपनिषद् बिषे गुरु-शिष्य का संवाद है।

ॐतत्सत् ॐतत्सत् ॐतत्सत् ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

कृष्णयजुर्वेदीय ।

तैत्तिरीयोपनिषद् सटीक ।

अथ शिक्षाध्यायरूपा प्रथमा वल्ली प्रारभ्यते ।

मूलम् ।

हरिः ॐ ॥ शं नो मित्त्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु माम् अवतु वक्तारम् ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

शम्, नः, मित्त्रः, शम्, वरुणः, शम्, नः, भवतु, अर्यमा, शम्, नः, इन्द्रः, बृहस्पतिः, शम्, नः, विष्णुः, उरुक्रमः, नमः, ब्रह्मणे, नमः, ते, वायो, त्वम्, एव, प्रत्यक्षम्, ब्रह्म, असि, त्वाम्, एव, प्रत्यक्षम्, ब्रह्म, वदिष्यामि, ऋतम्, वदिष्यामि, सत्यम्, वदिष्यामि, तत्, माम्, अवतु, तत्, वक्तारम्, अवतु, अवतु, माम्, अवतु, वक्तारम्, ॐ म्, शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

मित्त्रः=प्राण और दिन अभिमानी देवता
नः= हमको
शम्= सुखकारी
भवतु= होवें
वरुणः=अपान और रात्रि-अभिमानी देवता
नः=हमको
शम्=सुखकारी
भवतु=होवें
अर्यमा=नेत्र और सूर्य अभिमानी देवता
नः=हमको
शम्=सुखकारी
भवतु=होवें
इन्द्रः=बल अभिमानी देवता
नः=हमको
शम्=सुखकारी
भवतु=होवें
बृहस्पतिः=वाणी और बुद्धि अभिमानी देवता
नः=हमको
शम्=सुखकारी
भवतु=होवें
उरुक्रमः= बढ़ानेवाला है तीन पाद का जो राजा बलिके यज्ञ बिषे ऐसा
विष्णुः=चरणों का अभिमानी देवता
नः=हमको

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

शम्=सुखकारी
भवतु=होवें
ब्रह्मणे=व्यापक है जो ऐसे उस ब्रह्म के लिये
नमः=नमस्कार है
वायो=हे वायु देवता
ते=तेरे अर्थ अर्थात् तुझको
नमः=नमस्कार है
त्वम् एव=तूही
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष
ब्रह्म=ब्रह्म
असि=है
त्वाम्=तुझको
एव=ही
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष
ब्रह्म=ब्रह्म
वदिष्यामि=मैं कहूँगा
त्वाम्=तुझको
एव=ही
ऋतम्=निश्चयात्मक बुद्धि
वदिष्यामि=मैं कहूँगा
त्वाम्=तुझको
एव=ही
सत्यम्=सद्रूप
वदिष्यामि=मैं कहूँगा
तत्=वह वायुरूप ब्रह्म
माम्=मुझ विद्यार्थी को
अवतु=रक्षा करे अर्थात् विद्या से युक्त करे
तत्=वह वायुरूप ब्रह्म

वक्तारम्=आचार्य अर्थात् गुरु की
अवतु={ रक्षा करे अर्थात् वक्तृत्व-सामर्थ्य से युक्त करे
माम्=मुझको
अवतु=रक्षित करे
वक्तारम्=आचार्य्य को
अवतु=रक्षित करे द्विवचन आदरार्थ है
ॐशान्तिः=आध्यात्मिक विघ्नों से शान्ति हो
शान्तिः=आधिभौतिक विघ्नों से शान्ति हो
शान्तिः=आधिदैविक विघ्नों से शान्ति हो ॥

भावार्थ ।

मित्र इति । प्राणवृत्ति का अभिमानी मित्रसंज्ञक देवता हम लोगों को सुखकारी हों, अपानवृत्ति का अभिमानी वरुणसंज्ञक देवता हम लोगों को सुखकारी हो, चक्षु का अभिमानी अर्य्यमासंज्ञक देवता हम लोगों को सुख का कारक हो, भुजा का अभिमानी इन्द्रसंज्ञक देवता हमको सुखकारक हो, बुद्धि का अभिमानी बृहस्पति नामक देवता हम लोगों को सुखकारक हो, और चरणों का अभिमानी विष्णु देवता, जिसने राजा बलि के यज्ञ में अपने तीन पादों से तीनों लोकों को आच्छादन किया है, हमको सुखकारी हो, हे सूत्रात्मा वायु ! तेरेको मैं नमस्कार करता हूँ, तूही प्राणरूप से सब शरीरों में स्थित है, तेरे इस रूप को भी नमस्कार है, तूही प्रत्यक्ष ब्रह्म है, तुझको मैं ब्रह्म कहूँगा, और शास्त्र के निश्चित अर्थ के ग्रहण के लिये मैं तेरे ही को निश्चयात्मक बुद्धि कहूँगा, तूही साररूप ब्रह्म है, समष्टिरूप सूत्रात्मा वायु है, हे व्यष्टिरूप प्राणात्मक वायु ! तू मुझ विद्यार्थियों की रक्षा करे, और विद्या ग्रहण करने की सामर्थ्य को दे, ब्रह्मरूप वायु मेरे गुरु वक्ता को वक्तृत्व शक्ति दे, मुझको और मेरे आचार्य को रक्षा करे, और जो आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीन प्रकार के विघ्न हैं, उनसे हम दोनों की शान्ति होवे ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

मूलम् ।

ॐ शिक्षां व्याख्यास्यामः वर्णः स्वरो मात्रा बलम् साम सन्तानः इत्युक्तः शिक्षाध्यायः शिक्षां पञ्च ॥ २ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

शिक्षाम्, व्याख्यास्यामः, वर्णः, स्वरः, मात्राः, बलम्, साम, सन्तानः, इति, उक्तः, शिक्षाध्यायः ॥

अन्वयः । **पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।**

वर्णः=अक्षर अर्थात् अकारादि वर्ण

स्वरः=उदात्त, अनुदात्त और स्वरित अर्थात् ऊँचा, नीचा तथा मध्यम स्वर से उच्चारण करना

मात्राः=ह्रस्वादि अर्थात् ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत

बलम्=प्रयत्न अर्थात् शब्दों के उच्चारण में जो यत्न करना पड़ता है, वह

अन्वयः । **पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।**

साम=समता अर्थात् वर्णोच्चारण में मध्यमता

सन्तानः=संहिता अर्थात् शब्दों की सन्धि

इति=यह

शिक्षाध्यायः=शिक्षाध्याय

उक्तः=कहा गया है

शिक्षाम्=इस शिक्षा को अर्थात् वेदोच्चारण में वर्ण, स्वर आदि विवेक को

व्याख्यास्यामः=हम अच्छी प्रकार कहेंगे ॥

भावार्थ ।

अथ शिक्षां व्याख्यास्यामः ।

शिक्षतेऽनयेति शिक्षा । शिष्य के प्रति जिस करके शिक्षा की जावे, उसका नाम शिक्षा है, अथवा शिष्य के प्रति वर्णादिकों के उच्चारण करने के उपदेश करने का नाम शिक्षा है, उसी शिक्षा को हम व्याख्यान करेंगे, ॥ वर्णः ॥ अकार आदि वर्ण हैं, तथा उदात्त,

अनुदात्त और स्वरित ये स्वर हैं, इन्हीं स्वरों करके संपूर्ण वर्णों का उच्चारण होता है, जिस स्वर करके वर्ण का धीरे से उच्चारण किया जाता है, उसका नाम उदात्त है; जिस स्वर करके कुछ ज़ोर से वर्ण का उच्चारण किया जाता है, उसका नाम अनुदात्त है; और जिस स्वर करके बहुत ज़ोर से वर्ण का उच्चारण किया जाता है, उसका नाम स्वरित है; और जिनके मिलाने से विना ककारादिक वर्णों का उच्चारण न होसके, उसका नाम मात्रा है, सो अकार इकार उकारादिक हैं, इनके साथ जब ककार खकारादिक वर्ण मिलते हैं, तभी उनका उच्चारण होता है; विना उनके मिलने से ककारादिक वर्णों का उच्चारण नहीं होता है; जो अकार, इकार, उकारादि मात्रा हैं, सो ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतरूप से उच्चारण किये जाते हैं, याने हरएक मात्रा इस प्रकार तीन-तीन भेदोंवाली होती है, और बल नाम प्रयत्न-विशेष का है, एक तो वर्णों का स्थान होता है, दूसरा प्रयत्न होता है, जिस स्थान से जो वर्ण निकलता है, वह वर्ण का स्थान कहा जाता है, कोई वर्ण तो कंठ-स्थान से निकलता है, कोई ताल्वादि स्थानों से। अकार, ककार और विसर्ग इनका उच्चारण कंठ से होता है, इसीलिये इनका कंठस्थान कहा जाता है, और ईकार, चकार, यकार और शकार इनका उच्चारण तालु से होता है, इसलिये इनका तालुस्थान कहा जाता है; और स्पष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत; ये प्रयत्न कहलाते हैं, जिस वर्ण के उच्चारण करने में जिन अवयवों का बल लगता है अर्थात् जिन अवयवों के प्रयत्न से जो वर्ण उच्चारण किये जाते हैं, वे प्रयत्न उन्हीं वर्णों के कहलाते हैं, सो दिखाते हैं; जिस वर्ण के उच्चारण करने में जिह्वा के अग्रभाग में और कंठादिक शरीर के अवयवों में पूर्णरूप से परस्पर स्पर्श होता है, वह स्पष्ट-प्रयत्न कहा जाता है, सो ककार से लेकर मकार पर्यंत

जितने वर्ण हैं इनका स्पष्ट प्रयत्न है, इसी प्रकार और वर्णों का भी जान लेना, विस्तार के भय से यहां नहीं लिखते हैं, और वर्णों का मध्यम स्वर से-उच्चारण करने का नाम साम है, अर्थात् अतिशीघ्रता और अतिविलम्बता को त्याग करके जितना उसके उच्चारण करने के काल का नियम है, उतने काल में जो उसका उच्चारण करना है, उसीका नाम साम है, और वर्णों का अव्यवधानता करके जो उच्चारण करना है, उसका नाम सन्तान है; और वर्णों की शिक्षा होवे जिस अध्याय में, उस अध्याय का नाम शिक्षाध्याय है ॥ २ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

मूलम् ।

सह नौ यशः सह नौ ब्रह्मवर्चसम् अथातः संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः । पञ्चस्वधिकरणेषु अधिलोकमधिज्योतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मं ता महासंहिता इत्याचक्षते । अथाधिलोकम् पृथिवी पूर्वरूपम् द्यौरुत्तररूपम् आकाशः सन्धिः (३) वायुः सन्धानम् इत्यधिलोकम् अथाधिज्योतिषम् अग्निः पूर्वरूपम् आदित्य उत्तररूपम् आपः सन्धिः वैद्युतः सन्धानम् इत्यधिज्योतिषम् अथाधिविद्यम् आचार्य्यः पूर्वरूपम् (४) अन्तेवास्युत्तररूपम् विद्यासन्धिः प्रवचनं सन्धानम् इत्यधिविद्यम् अथाधिप्रजम् माता पूर्वरूपम् पितोत्तररूपम् प्रजा सन्धिः प्रजननं सन्धानम् इत्यधिप्रजम् (५) अथाध्यात्मम् अधराहनुः पूर्वरूपम् उत्तराहनुरुत्तररूपम् वाक्सन्धिः जिह्वा संधानम् इत्यध्यात्मम् इतीमा महासंहिताः य एवमेता महासंहिता

व्याख्याता वेद संधीयते प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन स्वर्गेण लोकेन सन्धिराचार्य्यः पूर्वरूपमित्यधिप्रजं लोकेन ॥ ६ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सह, नौ, यशः, सह, नौ, ब्रह्मवर्चसम्, अथ, अतः, संहितायाः, उपनिषदम्, व्याख्यास्यामः, पञ्चसु अधिकरणेषु, अधिलोकम्, अधिज्योतिषम्, अधिविद्यम्, अधिप्रजम्, अध्यात्मम्, ताः, महासंहिताः, इति, आचक्षते, अथ, अधिलोकम्, पृथिवी, पूर्वरूपम्, द्यौः, उत्तररूपम्, आकाशः, सन्धिः, वायुः, सन्धानम्, इति, अधिलोकम्, अथ, अधिज्योतिषम्, अग्निः, पूर्वरूपम्, आदित्यः, उत्तररूपम्, आपः सन्धिः, वैद्युतः, सन्धानम्, इति, अधिज्योतिषम्, अथ, अधिविद्यम्, आचार्य्यः, पूर्वरूपम्, अन्तेवासी, उत्तररूपम्, विद्यासन्धिः, प्रवचनम्, सन्धानम्, इति, अधिविद्यम्, अथ, अधिप्रजम्, माता, पूर्वरूपम्, पिता, उत्तररूपम्, प्रजा, सन्धिः, प्रजननम्, सन्धानम्, इति, अधिप्रजम्, अथ, अध्यात्मम्, अधरा, हनुः, पूर्वरूपम्, उत्तरा, हनुः, उत्तररूपम्, वाक्सन्धिः, जिह्वा, सन्धानम्, इति, अध्यात्मम्, इति, इमाः, महासंहिताः, यः, एवम्, एताः, महासंहिताः, व्याख्याताः, वेद, सन्धीयते, प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, अन्नाद्येन, स्वर्गेण, लोकेन, सन्धिः, आचार्यः, पूर्वरूपम्, इति, अधिप्रजम्, लोकेन ॥

अन्वयः	**पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।**
	नौ=हम दोनों अर्थात् गुरु-शिष्य को
	सह=साथ ही
	यशः=यश

अन्वयः	**पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।**
	अस्तु=होवे
	नौ=हम दोनों को
	सह=साथही
	ब्रह्मवर्चसम्=ब्रह्म-तेज

भवतु=होवे
अथातः=अब
संहितायाः=वेद की
उपनिषदम्=उपासना को
पञ्चसु=पाँच
अधिकरणेषु=ज्ञानाश्रयों में
व्याख्या स्यामः = हम व्याख्यान करेंगे
अधिलोकम्=लोक-संबंधी उपासना
अधिज्यो तिषम् =ज्योति-संबंधी उपासना
अधिविद्यम्=विद्या-संबंधी उपासना
अधिप्रजम्=प्रजा-संबंधी उपासना
अध्यात्मम्=आत्म संबंधी उपासना
ताः=इन पाँच ज्ञान-संबंधी उपासनाओं को
महासंहिताः=महासंहिता
इति=करके
आचार्यः=आचार्य लोग
आचक्षते=कहते हैं
अथ=अब
अधिलोकम्=लोक-आश्रय उपासना को
कथयामः=हम कहते हैं
पृथिवी=पृथिवी
पूर्वरूपम्=पूर्वरूप है
द्यौः=स्वर्ग
उत्तररूपम्=उत्तर रूप है
आकाशः=आकाश
सन्धिः=सन्धि है
वायुः=वायु
सन्धानम्=दोनों का मिलानेवाला है
इति=इस प्रकार
अधिलोकम्=अधिलोक उपासना है
अथ=अब
अधिज्यो तिषम् =ज्योतिष-विषयक
कथयामः=उपासना को कहते हैं
अग्निः=अग्नि
पूर्वरूपम्=पूर्वरूप है
आदित्यः=सूर्य
उत्तररूपम्=उत्तररूप है
आपः=जल
सन्धिः=सन्धि है
वैद्युतः=बिजुली
सन्धानम्=दोनों को मिलानेवाली है
इति=इस प्रकार
अधिज्यो तिषम् =ज्योति उपासना है
अथ=अब
अधिविद्यम्=विद्याश्रय उपासना को
कथयामः=कहते हैं
आचार्य्यः=आचार्य
पूर्वरूपम्=पूर्वरूप है
अन्तेवासी=शिष्य
उत्तररूपम्=उत्तररूप है
विद्या=विद्या
सन्धिः=सन्धि है
प्रवचनम्=वेद-शास्त्र का कथन
सन्धानम्=मिलानेवाला है

इति=इस प्रकार
अधिविद्यम्=विद्योपासना है
अथ=अब
अधिप्रजम्=प्रजा-विषयक उपासना को
कथयामः=कहते हैं
माता=माता
पूर्वरूपम्=पूर्वरूप है
पिता=पिता
उत्तररूपम्=उत्तररूप है
प्रजा=सन्तति
सन्धिः=सन्धि है
प्रजननम्=ऋतुकाल में स्वभार्या को गर्भ-दान देना
सन्धानम्=सन्धान है अर्थात् मिलाने वाला है
इति=इस प्रकार
अधिप्रजम्=प्रजाश्रय उपासना है
अथाध्यात्मम्=अब आत्म-संबंधी उपासना को
कथयामः=कहते हैं
अधरा हनुः=नीचे का ओठ
पूर्वरूपम्=पूर्वरूप है
उत्तरा हनुः=ऊपर का ओठ
उत्तररूपम्=उत्तररूप है
वाक्सन्धिः=वाणी सन्धि है
जिह्वा=जिह्वा
सन्धानम्=मिलानेवाली है
इति=इस प्रकार
अध्यात्मम्=आत्माश्रय उपासनाहै
इति=ऐसी
इमाः=ये पाँच उपसना
महासंहिताः=महासंहिता करके कही गई हैं
यः=जो
एवम्=इस प्रकार
एताः=इन
व्याख्याताः=कही हुई
महासंहिताः=महासंहिताओं को
वेद=उपासना करता है
सः=वह
प्रजया=सन्तति करके
पशुभिः=पशुओं करके
ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्म-तेज करके
अन्नाद्येन=अन्न धनादि करके
स्वर्गेण=स्वर्ग
लोकेन=लोक करके
सन्धीयते=युक्त होता है

भावार्थ ।

शिक्षामिति । पूर्वोक्त शान्तिपाठ के करने से जो विघ्नों की शान्ति होती है, उसकी प्रार्थना कीगई है; अब विद्या और उसके फल की उत्कर्षता के लिये शिष्य प्रार्थना करता है, हमारी और गुरु आचार्य की उपासना करके जगत् में कीर्ति हो, और हम दोनों के मुख की कान्ति ब्रह्म-

तेज करके हो ॥ अब संहिता-विषयक उपासना को कहते हैं ॥ अथेति ॥ जो वर्णवेद की उपासना पाँच प्रकार की है, उसीको अब हम कहते हैं ॥ पृथिवी आदिक लोकों को ध्येय-रूप करके देखना, जिससे चित्त की एकाग्रता होती है, वह अधिलोक-संबंधी (१) उपासना है ॥ चित्त की एकाग्रता के लिये जो अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि की ज्योतियों का ध्यान करना है, वह ज्योति-संबंधी (२) उपासना है ॥ विद्या की प्राप्ति के लिये जो आचार्य का ध्यान करना है, वह विद्या-संबंधी (३) उपासना है ॥ माता-पिता का जो चिन्तन करना, ध्यान करना है, वह प्रजा-संबंधी (४) उपासना है ॥ आत्मा शब्द देह का भी वाचक है, देह के अवयवों के विषय में जो ध्यान करना है, वह अध्यात्म-संबंधी (५) उपासना है ॥ यह उपासना पांच विषयोंवाली महासंहिता अर्थात् महोपनिषद् कही जाती है ॥ संहिता के विषय जो लोक हैं, वह बड़े-बड़े हैं इसी वास्ते संहिता को भी वेद के वेत्ता महासंहिता कहते हैं, और अधिलोकादि पाँच संहिता के पाँच अवयव हैं, सबसे पहले अधिलोक है, इसलिये प्रथम अधिलोक की उपासना को कहते हैं ॥ उपासना में चार भाग रक्खे हैं (१) पूर्व (२) उत्तर (३) सन्धि (४) सन्धान, इनका ध्यान एक दूसरे के बाद करना चाहिये । संहिता का पूर्वरूप अर्थात् पूर्वभाग पृथिवी है, याने पहले पृथिवी में दृष्टि करे और कोई लोक पृथिवी शब्द करके पृथिवी अभिमानी देवताओं का ग्रहण करते हैं, उनके मत में पृथिवी अभिमानी देवता में दृष्टि करनी कही है, क्योंकि जड़ की उपासना को वे नहीं मानते हैं, और संहिता के उत्तर-भाग में याने बाद को स्वर्गलोक का ध्यान करे, और संहिता के पूर्वोत्तर भागों की जो संधि याने मध्य देश है उसमें अन्तरिक्ष लोक की दृष्टि करे, संहिता के पूर्वोत्तर भागों का चिन्तन किया जावे जिस करके, उसका नाम

सन्धान है; वही पूर्व और उत्तरभागों को मिलाता है, स्वर्ग और पृथिवी का मिलानेवाला वायु है, इसका ध्यान सबके पीछे करना चाहिये, इस प्रकार संहिता की अधिलोक विषयक उपासना कही है, अब अधिज्योति विषयक उपासना को कहते हैं—महासंहिता का पूर्वभाग अग्नि है, याने पहले अग्नि का ध्यान करे, और फिर आदित्य अर्थात् सूर्य का जो उत्तरभाग है ध्यान करे, और फिर दोनों भागों की सन्धिरूप जो जल है, उस जल का ध्यान करे, उन दोनों को मिलानेवाली विद्युत सन्धान है, उसका ध्यान करे, यह अधिज्योति विषयक उपासना है। अब विद्या-विषयक उपासना को कहते हैं ॥ आचार्य पूर्वरूप है, अर्थात् प्रथम आचार्य का ध्यान करे, और शिष्य संहिता का उत्तररूप है, इसलिये महासंहिता के उत्तरभाग में शिष्य दृष्टि करे, और विद्या का प्रतिपादक जो ग्रंथ है वह संधि है, दोनों भागों की संधि में विद्या का ध्यान करे॥ और ग्रन्थ का जो अध्ययन है वह सन्धान स्वरूप है, उसमें भी शिष्य ध्यान करे यह विद्या-विषयक उपासना है ॥ ३ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु अमृतस्य देवधारणो भूयासम् शरीरं मे विचर्षणम् जिह्वा मे मधुमत्तमा कर्णाभ्याम् भूरिविश्रुवम् ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधयापिहितः श्रुतं मे गोपाय आवहन्ती वितन्वाना (७) कुर्वाणाचिरमात्मनः वासांसि मम गावश्च अन्नपाने च सर्वदा ततो मे श्रियमावह लोमशां पशुभिः सह स्वाहा आमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा विमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा प्रमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा दमायन्तु ब्रह्म-

चारिणः स्वाहा शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा (८) यशो जनेऽसानि स्वाहा श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा तंत्वा भग प्रविशानि स्वाहा स मा भग प्रविश स्वाहा तस्मिंस्तु सहस्रशाखे निभगाहं त्वयि मृजे स्वाहा यथाऽऽपः प्रवतायन्ति यथा मासा अहर्जरम् एवं मां ब्रह्मचारिणो धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा प्रतिवेशोऽसि प्रमाभाहि प्रमा पद्यस्व ॥ ६ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यः, छन्दसाम्, ऋषभः, विश्वरूपः, छन्दोभ्यः, अधि, अमृतात्, सम्बभूव, सः, मा, इन्द्रः, मेधया, स्पृणोतु, अमृतस्य, देव, धारणः, भूयासम्, शरीरम्, मे, विचर्षणम्, जिह्वा, मे, मधुमत्तमा, कर्णाभ्याम्, भूरिविश्रुवम्, ब्रह्मणः, कोशः, असि, मेधया, अपिहितः, श्रुतम्, मे, गोपाय, आवहन्ती, वितन्वाना, कुर्वाणा, अचिरम्, आत्मनः, वासांसि, मम, गावः, च, अन्नपाने, च, सर्वदा, ततः, मे, श्रियम्, आवह, लोमशाम्, पशुभिः, सह, स्वाहा, आमायन्तु, ब्रह्मचारिणः, स्वाहा, विमायन्तु, ब्रह्मचारिणः, स्वाहा, प्रमायन्तु, ब्रह्मचारिणः, स्वाहा, दमायन्तु, ब्रह्मचारिणः, स्वाहा, शमायन्तु, ब्रह्मचारिणः, स्वाहा, यशः, जने, असानि, स्वाहा, श्रेयान्, वस्यसः, असानि, स्वाहा, तम्, त्वा, भग, प्रविशानि, स्वाहा, सः, मा, भग, प्रविश, स्वाहा, तस्मिन्, तु, सहस्रशाखे, नि, भग, अहम्, त्वयि, मृजे, स्वाहा, यथा, आपः, प्रवतायन्ति, यथा, मासाः, अहर्जरम्; एवम्, माम्, ब्रह्मचारिणः, धातः, आयन्तु, सर्वतः, स्वाहा, प्रतिवेशः, असि, प्रमाभाहि, प्रमा, पद्यस्व ॥ ४ ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

यः = जो प्रणव
छन्दसाम् = वेदों विषे
ऋषभः = श्रेष्ठ
च = और
विश्वरूपः = सर्ववाणी-रूप
अस्ति = है
च = और
यः = जो
अभिअमृतात् = अमृत रूप
छन्दोभ्यः = वेदों से
सम्बभूव = उत्पन्न हुआ है
सः = वह प्रणव
इन्द्रः = सर्वकामना का स्वामी ईश्वर
मा = मुझको
मेधया = प्रज्ञा करके
स्पृणोतु = बलवान् करे
देव = हे देव !
अमृतस्य = ब्रह्म-ज्ञान का
धारणः = धारण करनेवाला
भूयासम् = होऊँ मैं
मे = मेरा
शरीरम् = देह
विचर्षणम् = ब्रह्मज्ञानधारणयोग्य
भूयात् = होवे
मे = मेरी
जिह्वा = जिह्वा
मधुमत्तमा = अत्यंत मधुर भाषण करनेवाली

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

भूयात् = होवे
अहम् = मैं
कर्णाभ्याम् = दोनों कर्णों करके
भूरि = बहुत
विश्रुवम् = सुननेवाला
भूयासम् = होऊँ
त्वम् = तू
मेधया = लौकिक बुद्धि करके
अपिहितः = ढका हुआ
ब्रह्मणः = परब्रह्म का
कोशः = कोश
असि = है
मे = मेरे
श्रुतम् = सुने हुये आत्म-ज्ञान को
गोपाय = तू रक्षा कर
या = जो
श्रीः = श्री
अचिरंकुर्वाणा = जल्दी करती हुई अर्थात् शीघ्र
मम = मेरे
आत्मनः = शरीर के लिये
वासांसि = वस्त्रों को
+ च = और
गावः = गौवों को
+ च = और
अन्नपाने = खान पान को
च = और

लोमशाम् = { बालवाला धन अर्थात् अज, अवि (बकरी, भेड़ी) इत्यादिकोंको }
पशुभिः = अश्व आदि पशुवों
सह = सहित
आवहन्ती = सब ओर से लाती हुई
+ च = और
वितन्वाना = विस्तार करती हुई याने बढ़ाती हुई
भवति = होती है
तत् = सो
हे इन्द्र = अहो प्रणव !
ततः = बुद्धि-व्याप्ति के पश्चात्
त्वम् = तू
मे = मेरे अर्थ
एवम् = ऐसी
श्रियम् = यागादि समर्थ लक्ष्मी को
आवह = प्राप्त कर
अतः = इस लिये
ते = तेरे अर्थ
स्वाहा = यह हविर्दान है
+ च = और
ब्रह्मचारिणः = ब्रह्मचारीलोक
मा = मेरे पास
आयन्तु = आवें
अतः = इस लिये
ते = तेरे अर्थ

स्वाहा = यह हविर्दान है
ब्रह्मचारिणः = ब्रह्मचारी
मा = न
वियन्तु = चले जावें
अतः = इसलिये
ते = तेरे अर्थ
स्वाहा = यह हविर्दान है
ब्रह्मचारिणः = ब्रह्मचारी
विद्यां = विद्या को
प्रमायन्तु = प्राप्त होवें
अतः = इसलिये
ते = तेरे अर्थ
स्वाहा = यह हविर्दान है
ब्रह्मचारिणः = ब्रह्मचारी
दमायन्तु = { दमनको प्राप्त होवें, अर्थात् इन्द्रियों का निग्रह करें }
अतः = इसलिये
ते = तेरे अर्थ
स्वाहा = यह हविर्दान है
ब्रह्मचारिणः = ब्रह्मचारी
शमायन्तु = शान्ति को प्राप्त होवें
अतः = इसलिये
ते = तेरे अर्थ
स्वाहा = यह हविर्दान है
+ च = और
अहम् = मैं
जने = लोक विषे
यशः = यशस्वी
असानि = होऊँ
अतः = इसलिये

ते = तेरे अर्थ
स्वाहा = यह हविर्दान है
वस्यसः = और भगवान् से भी
श्रेयान् = श्रेष्ठ
असानि = मैं होऊँ
अतः = इसलिये
ते = तेरे अर्थ
स्वाहा = यह हविर्दान है
भग = हे प्रणव-रूप भगवन् !
तम् = उस
त्वाम् = तुझ बिषे
प्रविशानि = मैं प्रवेश करूँ
अतः = इसलिये
ते = तेरे अर्थ
स्वाहा = यह हविर्दान है
भग = हेॐकाररूप भगवन्!
सः = सो
त्वम् = तू
मा = मुझ बिषे
प्रविश = प्रवेश कर
अतः = इसलिये
ते = तेरे अर्थ
स्वाहा = यह हविर्दान है
भग = अहो भगवन् !
सहस्रशाखे = बहु भेदवाले
तस्मिन् = उस
त्वयि = तेरे बिषे
अहम् = मैं
पापकृत्याम् = अपने पापकर्म को
निमृजे = शोधन करूँ

अतः = इसलिये
ते = तेरे अर्थ
स्वाहा = यह हविर्दान है
धातः = हे सर्व विधाता ! हे जगत् कर्त्ता !
यथा = जैसे
आपः = जल
प्रवता = ढालवाले देश करके
यन्ति = बहते हैं
च = और
यथा = जैसे
मासाः = चैत्रादि मास
अहर्जरम् = संवत्सर को अर्थात् वर्ष को
यन्ति = प्राप्त होते हैं
एवम् = इसी प्रकार
ब्रह्मचारिणः = ब्रह्मचारी लोक
माम् = मुझ प्रति याने मेरे पास
सर्वतः = सब ओर से
आयन्तु = आवें
अतः = इसलिये
ते = तेरे अर्थ
स्वाहा = यह हविर्दान है
यतः = चूँकि
त्वम् = तू
प्रतिवेशः = { उपासकों के पाप और दुःख के दूर करने का स्थान है
तस्मात् = इस लिये
त्वम् = तू

मा = मुझ उपासक के प्रति
प्रभाहि = प्रकाश हो
च = और
माम् = मुझे
प्रपद्यस्व = आत्मभाव को प्राप्त कर ॥

भावार्थ ।

यश्छन्दसामिति । जो पुरुष बुद्धिहीन है, उसको सुना हुआ ग्रंथ का अर्थ विस्मरण होजाता है इसलिये उसकी बुद्धि में ब्रह्म-विद्या का उदय होना असम्भव है, उसको शुद्ध बुद्धि की प्राप्ति के लिये प्रणव की उपासना करनी कही है, सो दिखाते हैं ॥ यः ॥ ॐ जो वेदों में श्रेष्ठ है और अमृतरूप है, सो मुझ उपासक की बुद्धि को स्पर्श करे, अर्थात् मेरी बुद्धि में विद्या के ग्रहण करने की सामर्थ्य को देवे, ताकि मैं ब्रह्म-ज्ञान का धारण करनेवाला होऊँ और मेरी देह ब्रह्म-ज्ञान के धारण करने-योग्य होवे और मेरी जिह्वा मधुर भाषण करनेवाली हो, हे प्रणवदेव ! तू विश्वरूप है, अर्थात् सम्पूर्ण जगत् तेरा ही रूप है, और तू वाणियों का अन्तर्भाव होने से सम्पूर्ण वाणी-रूप भी है, तू इन्द्र है अर्थात् परमेश्वर है, हे दीप्तिमन्, प्रणव ! मोक्ष का साधनभूत जो ज्ञान है, उसका मैं धारण करनेवाला होजाऊँ और मेरा जो शरीर है सो रोगों से रहित हो और मेरी जिह्वा अतिशय करके मधुर भाषण करनेवाली हो और मेरे कानों में वेद के श्रवण करने की सामर्थ्य हो, हे प्रणव ! ब्रह्म परमात्मा का तू कोश है अर्थात् परमात्मा की उपलब्धि का तू स्थान है और अलौकिक प्रज्ञा करके तू आच्छादित है, इसलिये सामान्य बुद्धिवाले तुझको नहीं जान सकते हैं, विशेष बुद्धिवाले ही पुरुष तुझको जान सकते हैं, मेरे श्रवण किये हुये आत्म-ज्ञान की तुम रक्षा करो ॥ आवहन्तीति ॥ बुद्धि की प्राप्ति की कामनावाला जो पुरुष है, उसके श्री की प्राप्ति के लिये होम-मन्त्रों को अब लिखते हैं ॥ आवहन्तीति ॥ हे प्रणव ! हे परमेश्वर ! जो श्री

मुझ उपासक के लिये वस्त्र, बकरी, गौवें और अन्न पानादिक को शीघ्र प्राप्त करती है और प्राप्त हुओं को विस्तार करती है, उसी को मेरे प्रति तुम प्राप्त करो, हे प्रणव ! बुद्धि की प्राप्ति के पश्चात् तू मेरे अर्थ योगादि के लिये लक्ष्मी प्राप्त कर इसी लिये यह हविर्दान है और ब्रह्मचारी लोग शान्तचित्त होते हुये मेरे पास आवें और चले न जावें, इसलिये यह हविर्दान तेरे प्रति है, और लोक में यश को प्राप्त होऊँ और धनवान् होऊँ या उससे भी अति श्रेष्ठ होऊँ इसलिये यह हविर्दान तेरे अर्थ है; हे प्रणवरूप, परमात्मन् ! मैं तेरे में और तू मेरे में प्रवेश करे, और तेरे स्पर्श से मेरे सब पाप नाश हो जावें, इसलिये यह हविर्दान तेरे वास्ते है ॥ यथेति ॥ जैसे जलरूपी नदियाँ नीचे के देश में गमन करतीं हैं और जैसे चैत्रादिक मास दिनों के सहित संवत्सर के अन्तर्भूत होजाते हैं, वैसे, हे सम्पूर्ण जगत् के कर्त्ता ! मुझ आचार्य को ब्रह्मचारी शिष्य चारो दिशाओं से प्राप्त हों अर्थात् मेरे गृह में प्रवेश करें इसलिये तेरे अर्थ यह हविर्दान है, हे प्रणवदेव ! तू उपासकों के पाप और दुःख दूर करने का स्थान है इसलिये मेरी प्रार्थना है कि तू मुझ उपासक के प्रति प्रकाशमान हो और मुझे आत्मभाव को प्राप्त कर ॥ ७–९ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

मूलम् ।

भूर्भुवः स्वरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः तासामु ह स्मैतां चतुर्थीं माहाचमस्यः प्रवेदयते मह इति तद्ब्रह्म स आत्माऽङ्गान्यन्या देवताः भूरिति वा अयं लोकः भुव इत्यन्तरिक्षम् स्व इत्यसौ लोकः ॥ १० ॥

मह इत्यादित्यः आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते भूरिति वा अग्निः भुव इति वायुः स्वरित्या-

दित्यः मह इति चन्द्रमाः चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतींषि महीयन्ते भूरिति वा ऋचः भुव इति सामानि स्वरिति यजूंषि ॥ ११ ॥

मह इति ब्रह्म ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते भूरिति वै प्राणः भुव इत्यपानः स्वरिति व्यानः मह इत्यन्नम् अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्द्धा चतस्रो व्याहृतयः ता यो वेद स वेद ब्रह्म सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति असौ लोको यजूंᳪसि वेद द्वे च ॥ १२ ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

भूः, भुवः, स्वः, इति, वै, एताः, तिस्रः, व्याहृतयः, तासाम्, उ, ह, स्म, एताम्, चतुर्थीम्, महाचमस्यः, प्रवेदयते, महः, इति, तत्, ब्रह्म, सः, आत्मा, अङ्गानि, अन्याः, देवताः, भूः, इति, वै, अयम्, लोकः, भुवः, इति, अन्तरिक्षम्, स्वः, इति, असौ, लोकः, महः, इति, आदित्यः, आदित्येन, वाव, सर्वे, लोकाः, महीयन्ते, भूः, इति, वै, अग्निः, भुवः, इति, वायुः, स्वः, इति, आदित्यः, महः, इति, चन्द्रमाः, चन्द्रमसा, वाव, सर्वाणि, ज्योतींषि, महीयन्ते, भूः, इति, वै, ऋचः, भुवः, इति, सामानि, स्वः, इति, यजूंषि, महः, इति, ब्रह्म, ब्रह्मणा, वाव, सर्वे, वेदाः, महीयन्ते, भूः, इति, वै, प्राणः, भुवः, इति, अपानः, स्वः, इति, व्यानः, महः, इति, अन्नम्, अन्नेन, वाव, सर्वे, प्राणाः, महीयन्ते, ताः, वै, एताः, चतस्रः, चतुर्धा, चतस्रः, व्याहृतयः, ताः, यः, वेद, सः, वेद, ब्रह्म, सर्वे, अस्मै, देवाः, बलिम्, आवहन्ति, असौ, लोकः, यजूंᳪषि, वेद, द्वे, च ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
भूः	= भूः
भुवः	= भुवः
स्वः	= स्वः
इति	= इस प्रकार
एताः	= ये
तिस्रः	= तीन
व्याहृतयः	= व्याहृति
वै	= प्रसिद्ध हैं
तासाम्	= उन तीनों की
इयम्	= यह
चतुर्थी	= चौथी
व्याहृतिः	= व्याहृति
महः इति	= महः करके प्रसिद्ध है
एताम्	= इस
चतुर्थीं	= चौथी
महः	= महः
इति	= व्याहृति को
माहाचमस्यः	= महाचमस्य नामक ऋषि
उहस्म	= अच्छी प्रकार
प्रवेदयते	= जानता भया
तत्	= वह व्याहृति
ब्रह्म	= ब्रह्म-रूप है
सः	= वह महः रूप ब्रह्म
आत्मा	= देवलोक वेदादि का शरीर-भूत है
अन्याः	= और
देवताः	= देवलोक वेदादि
तस्य	= उस महर्ब्रह्म के

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
अङ्गानि	= अवयव-भूत हैं
अयम्	= यह मनुष्य
लोकः	= लोक
भूः	= भूः
इति	= करके
वै	= प्रसिद्ध है
भुवः	= भुवः
इति	= करके
अन्तरिक्षम्	= अन्तरिक्ष लोक
वै	= प्रसिद्ध है
स्वः	= स्वः
इति	= करके
असौ	= स्वर्ग
लोकः	= लोक
वै	= प्रसिद्ध है
महः	= महः
इति	= करके
आदित्यः	= सूर्य लोक
वै	= प्रसिद्ध है
आदित्येन	= सूर्य से
वाव	= ही
सर्वे	= सब
लोकाः	= भूरादि लोक
महीयन्ते	= वृद्धि को प्राप्त होतेहैं
अग्निः	= अग्नि-देवता
भूः	= भूः
इति	= करके
वै	= प्रसिद्ध है

वायुः=वायु देवता
भुवः=भुवः
इति=करके
वै=प्रसिद्ध है
आदित्यः=सूर्यदेवता
महः=महः
इति=करके
वै=प्रसिद्ध है
चन्द्रमाः=चन्द्रमा देवता
स्वः=स्वः
इति=करके
वै=प्रसिद्ध है
वाव=निश्चय करके
सर्वाणि=ये सब
ज्योतींषि=ज्योतिर्लोक
चन्द्रमाः=चन्द्रमा करके
महीयन्ते=वृद्धि को प्राप्त होते हैं
ऋचः=ऋग्वेद
भूः=भूः
इति=करके
वै=प्रसिद्ध है
सामानि=सामवेद
भुवः=भुवः
इति=करके
वै=प्रसिद्ध है
यजूंषि=यजुर्वेद
स्वः=स्वः
इति=करके
वै=प्रसिद्ध है
ब्रह्म=प्रणव
महः=महः
इति=करके प्रसिद्ध हैं
ब्रह्मणा=प्रणव से
वाव=ही
सर्वे=सब
वेदाः=वेद
महीयन्ते=वृद्धि को प्राप्त होते हैं
प्राणः=प्राणवायु
भूः=भूः
इति=करके
वै=प्रसिद्ध है
अपानः=अपानवायु
भुवः=भुवः
इति=करके
वै=प्रसिद्ध है
व्यानः=व्यान-वायु
स्वः=स्वः
इति=करके
वै=प्रसिद्ध है
अन्नम्=अन्न
महः=महः
इति=करके
वै=प्रसिद्ध है
अन्नेन=अन्न से
वाव=ही
सर्वे=सब
प्राणाः=प्राणभूत जीव
महीयन्ते=वृद्धि को प्राप्त होते हैं
वै=निश्चय करके
ताः=वे
एताः=ये
चतस्रः=चार

व्याहृतयः=व्याहृतियाँ
चतस्रः=प्रत्येक चार-चार हो कर
चतुर्धा=चार प्रकार की
भवन्ति=होती हैं
यः=जो
ताः=पूर्वोक्त व्याहृतियों को
वेद=जानता है
सः=सो
ब्रह्म=ब्रह्म को
वेद=जानता है
अस्मै=इस ब्रह्मवेत्ता के अर्थ
देवाः=अंगभूत देवता
बलिम्=भागधर्म यानी खिराज को
आवहन्ति=सब तरफ़ से लाते हैं ॥

भावार्थ ।

भूर्भुवः स्वरिति । भूर्भुवः स्वः, इस प्रकार ये तीन व्याहृतियाँ हैं, उन तीन व्याहृतियों से पृथक् एक महाव्याहृति है, महाचमस्य आचार्य इसको भली प्रकार जानते थे, वह ब्रह्मरूप है, वही देवलोक और वेदादि का शरीर है, और जितने देवता और लोक अथवा प्राण हैं, वे सब इस महाव्याहृति के ही अंग हैं, इसी को दिखाते हैं, भूः रूप यह मनुष्यलोक है अर्थात् यह जो प्रत्यक्ष का विषय पृथ्वीलोक है उसी का नाम भूः है, और भुवः करके अन्तरिक्षलोक है, और स्वः करके स्वर्गलोक है, और महः करके सूर्यलोक है, सूर्य करके ही पृथ्वीलोक, अन्तरिक्षलोक, और स्वर्गलोक प्रकाशित होते हैं, इसी वास्ते इस महः व्याहृति को आदित्यरूप कहते हैं, भूः व्याहृति अग्नि रूप है, इसमें अग्निदेवता की दृष्टि को करे, भुवः व्याहृति वायुरूप है, इसमें वायुदेवता की दृष्टि को करे, और स्वः व्याहृति सूर्यरूप है, इसमें सूर्यदेवता की दृष्टि को करे, और महः व्याहृति चन्द्रमारूप है, इसमें चन्द्रदेवता की दृष्टि को करे, यह सम्पूर्ण ज्योतिर्लोक चन्द्रमा करके वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ भूरितीति ॥ अब उन्हीं व्याहृतियों में वेददृष्टि को विधान करते हैं ॥ ऋग्वेद में भूः दृष्टि करे, साम में भुवः दृष्टि करे, यजुर्वेद में स्वः दृष्टि करे और ब्रह्म में महः दृष्टि करे,

अर्थात् ॐकार दृष्टि करे, तात्पर्य यह है कि भूः को ऋग्वेद करके जाने, भुवः को सामवेद करके जाने, स्वः को यजुर्वेद करके जाने, और महः को ब्रह्मरूप या ॐकाररूप करके जाने, उन्हीं व्याहृतियों में अब प्राणादि दृष्टियों के विधान को करते हैं ॥ भूरिति ॥ भूः व्याहृति प्राणरूप है, अर्थात् भूः में उपासक प्राण-दृष्टि को करे, भुवः में अपान-दृष्टि को करे, स्वः में व्यान-दृष्टि को करे, और महः में अन्न-दृष्टि को करे, क्योंकि अन्न के भोजन करने से ही सम्पूर्ण प्राण अपानादि तृप्ति को प्राप्त होते हैं, विना अन्न के प्राण अपानादिक सूख जाते हैं ॥ ता इति ॥ भूः भुवः, स्वः, महः ये जो चार व्याहृतियाँ हैं, इनमें से एक एक व्याहृति चार-चार प्रकार की होने से षोडश (सोलह) भेद इनके बन जाते हैं, इन्हीं सोलहों का नाम षोडश कला भी है, इन्हीं के सम्बन्ध से पुरुष जीवात्मा भी षोडश कलावाला कहा जाता है, वह जो व्याहृतियों की उपासना को करता है, और उनकी उपासना को जानता है, वह ब्रह्म को ही जानता है, और ब्रह्म को ही प्राप्त होता है, उस उपासक के प्रति सम्पूर्ण देवता बलि को प्राप्त करते हैं ॥ १०-१२ ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः अमृतो हिरण्मयः अन्तरेण तालुके य एष स्तन इवावलम्बते सेन्द्रयोनिः यत्रासौ केशान्तो विवर्तते व्यपोह्य शीर्षकपाले भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति भुव इति वायौ ॥ १३ ॥

स्वरित्यादित्ये मह इति ब्रह्मणि आप्नोति स्वा राज्यम् आप्नोति मनसस्पातिम् वाकपतिश्चक्षुष्पतिः श्रोत्रपति-

विज्ञानपतिः एतत्तदो भवति आकाशशरीरं ब्रह्म सत्यात्मप्राणारामं मन आनन्दं शान्तिसमृद्धममृतम् इति प्राचीनयोग्योपास्स्व वा यावमृतमेकं च ॥ १४ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अन्तर्हृदये, आकाशः, तस्मिन्, अयम्, पुरुषः, मनोमयः, अमृतः, हिरण्यमयः, अन्तरेण, तालुके, यः, एषः, स्तनः, इव, अवलम्बते, सा, इन्द्रयोनिः, अत्र, असौ, केशान्तः, विवर्तते, व्यपोह्य, शीर्षकपाले, भूः, इति, अग्नौ, प्रतितिष्ठति, भुवः, इति, वायौ, स्वः, इति, आदित्ये, महः, इति, ब्रह्मणि, आप्नोति, स्वाराज्यम्, आप्नोति, मनसस्पतिम्, वाक्पतिः, चक्षुष्पतिः, श्रोत्रपतिः, विज्ञानपतिः, एतत्तदः, भवति, आकाशशरीरम्, ब्रह्म, सत्यात्मप्राणारामम्, मनः, आनन्दम्, शान्तिसमृद्धम्, अमृतम्, इति, प्राचीनयोग्य, उपास्स्व, वायौ, अमृतम्, एकम्, च ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
अन्तर्हृदये=	हृदय के मध्य बिषे जो ऊर्ध्व नाल अधोमुख कमलाकारमांस-पिण्ड प्रसिद्ध है, उसके भीतर जो
आकाशः=	आकाश है
तस्मिन्=	तिस बिषे
यः=	जो
एषः=	यह
पुरुषः=	पुरुष है
सः=	सो
मनोमयः=	विज्ञान-रूप मन करके प्राप्त होने योग्य है
अयम्=	यह
अमृतः=	मरण-रहित
हिरण्मयः=	ज्योतिःस्वरूप
प्रतितिष्ठति=	प्रतिष्ठित है
तत्प्राप्तये=	उसकी प्राप्ति के लिये
या=	जो
हृदयात्=	हृदय से

प्रवृत्ता=आरम्भ हुई
सुषुम्णा=सुषुम्णा योगशास्त्र में प्रसिद्ध
नाडी=नाड़ी
अस्ति=है
च=और
तालुके=दोनों तालुवों के
अन्तरेण=बीच में
यः=जो
एषः=यह
स्तनः=स्तन यानी थन
इव=सा
अवलम्बते=लटकता है
तस्य=उसके
अन्तरेण=मध्य विषे
गत्वा=निकल कर
यत्र=जहाँ
असौ=प्रसिद्ध
केशान्तः=केशमूल
वर्तते=वर्तमान है अर्थात् जो ब्रह्म-रन्ध्र है
तत्र=वहाँ पर
शीर्षकपाले=शीर्षकपालों को
व्यपोह्य=विदारण करके
विनिर्गता=निकली है
सा=सो नाड़ी
इन्द्रयोनिः=ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग है
एवंविद्वान्=इस मार्ग का ज्ञाता
भूः=भूः व्याहृति
इति=करके
अग्नौ=अग्नि विषे
प्रतितिष्ठति=स्थित होता है अर्थात् अग्निवत् तेजस्वी और व्यापक होता है
भुवः=भुवः व्याहृति
इति=करके
वायौ=वायु विषे
प्रतितिष्ठति=स्थित होता है
स्वः=स्वः व्याहृति
इति=करके
आदित्ये=सूर्य विषे
प्रतितिष्ठति=स्थित होता है
महः=महः व्याहृति
इति=करके
ब्रह्मणि=ब्रह्म विषे
प्रतितिष्ठति=स्थित होता है
च=और
अन्ते=अन्त में
स्वाराज्यम्=स्वाराज को
आप्नोति=प्राप्त होता है
तदन्तः=उसके पीछे
सः=वह
मनस्पतिम्=सर्व मनोमय भाव को
आप्नोति=प्राप्त होता है
च=और
वाक्पतिः=सर्व वाणी का पति
भवति=होता है
चक्षुष्पतिः=सर्वका द्रष्टा
भवति=होता है

श्रोत्रपतिः=सर्वका श्रोता
भवति=होता है
विज्ञानपतिः=सर्वका जाननेवाला
भवति=होता है
एतत्तद्ः=सर्व रूप
भवति=होता है
च=और
आकाश-शरीरम्=आकाशवत् सूक्ष्म शरीर है जिसका
सत्यात्म=सत्य रूप है आत्मा जिसका
प्राणारामम्=प्राणों को सुख-स्थान है जो
मनआनन्दम्=मन का आनंद बढ़ानेवाला है जो
शान्तिसमृद्धम्=शान्ति करके पूर्ण है जो
अमृतम्=मरण-धर्म-रहित है जो
इति ब्रह्म=ऐसा ब्रह्म है
प्राचीनयोग्य=अहो प्राचीन योग्य नामक शिष्य
तत्=उसको
त्वम्=तू
उपास्स्व=उपासना कर ॥

भावार्थ ।

पाँचवें अनुवाक में. अंगों की उपासना कही गई है, अब इस छठे अनुवाक में अंगी ब्रह्म है, उसकी उपासना को कहते हैं, ब्रह्म का स्वरूप कैसा है, सो कहते हैं—

स य इति । इस स्थूल-शरीर के अन्तर अंगुष्ठ प्रमाणवाला हृदय है, उसके भीतर जो आकाश है, वह भी उपाधि के परिच्छेद करके अंगुष्ठ प्रमाणवाला कहा जाता है, उस आकाश के अन्तर जोकि आत्मा है, वह भी उपाधि के परिच्छेद से अंगुष्ठ प्रमाणवाला ही कहा जाता है, जैसे घट और उपाधि करके आकाश भी घटाकाश कहा जाता है, जैसे आकाश व्यापक है, वैसे आत्मा भी व्यापक है, वह जो हृदय के अन्तर आकाश है, उस आकाश के भीतर यह पुरुष-रूप आत्मा स्थित है, भूः आदि लोक जिस करके पूर्ण हों, उसका नाम पुरुष है; यद्यपि वह सर्वत्र स्थित है तथापि उसकी उपलब्धि का स्थान हृदय ही है, क्योंकि मन के निरोध करने से ही आत्मा का साक्षात्कार

होता है, वह आत्मा मनोमय है, अर्थात् ज्ञान-स्वरूप है, क्योंकि मनन करने का नाम मन है, और मनन नाम ज्ञान का है, और मय शब्द का अर्थ स्वरूप है, तब मनोमय का अर्थ ज्ञान-स्वरूप हुआ, वही आत्मा है, वही मरण-धर्म से रहित है, वह प्रकाश-स्वरूप है, इतना कह करके उपास्य जो ब्रह्म है, उसके स्वरूप को दिखलाया है, अब उपासक को ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिये मार्ग-विशेष को कहते हैं, और तालु के बीच में स्तन के तुल्य एक मांस का टुकड़ा लटकता है, उसके समीप सुषुम्णानाड़ी ऊर्ध्व को गई है, उसी सुषुम्णा नाड़ी का नाम इन्द्र-योनि है, अर्थात् वही ब्रह्म-लोक की प्राप्ति का मार्ग है, उसी नाड़ी द्वारा ऊपर ब्रह्म-लोक को गमन करता हुआ उपासक मोक्ष को प्राप्त होता है, क्योंकि वह नाड़ी शीर्ष कपाल को भेदन करके ब्रह्म-लोक में गई है, उसी नाड़ी द्वारा वह उपासक ब्रह्म-लोक को गमन कर जाता है ॥

ब्रह्म-लोक की प्राप्ति को कह करके अब उपासक की फल की प्राप्ति को कहते हैं—

भूरिति । "भूः" यह जो व्याहृति-रूप अग्नि है, वही इस लोक का अधिष्ठाता है, उसमें व्यष्टिरूपी अग्नि व्याप्त होती है, और "भुवः" यह जो दूसरी व्याहृति-रूप वायु है उसमें व्यष्टिवायु अन्तरिक्षलोक को व्याप्त करके स्थित है, और " स्वः " यह जो तीसरी व्याहृति है, सो आदित्य-रूप है; उसने तीनों लोकों को अपने तेज करके ढक रक्खा है, और "महः" यह जो चौथी व्याहृति है, वह ब्रह्मरूप है; इसमें तीनों व्याहृतियाँ स्थित हैं, और इसका उपासक स्वराजभाव को प्राप्त होता है सम्पूर्ण प्राणियों के मनों का भी अधिपति अर्थात् स्वामी होजाता है, सम्पूर्ण प्राणियों की वाणियों का भी अधिपति होजाता है, सम्पूर्ण चक्षु इन्द्रियों का भी अधिपति होजाता है, सम्पूर्ण

प्राणियों के श्रोत्र इन्द्रियों का और सम्पूर्ण प्राणियों की बुद्धियों का भी अधिपति अर्थात् प्रेरक होजाता है, उपासक को समष्टि-रूप विराट्-भाव की प्राप्ति होने के बाद ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है, और फिर वह ब्रह्मस्वरूप होजाता है ॥

प्र०—कैसा वह ब्रह्म है ?

उ०—आकाश की तरह मूर्ति से रहित है, सद्रूप है अर्थात् बाध्य से रहित है, वागादिक इन्द्रियों की उत्पत्ति का स्थान है, मन को भी उसी में आनन्द मिलता है, क्योंकि वह मन के आनन्द का स्थान है, वह शान्त-स्वरूप है; मरण-धर्म से रहित है, ऐसा जो ब्रह्म है हे शिष्य ! उसकी तुम उपासना करो ॥ १३—१४ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

मूलम् ।

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिशः अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि आप ओषधयो वनस्पतयः आकाश आत्मा इत्यधिभूतम् अथाध्यात्मम् प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानः चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् त्वक् चर्म्म माᳬसᳬ स्नावास्थि मज्जा एतदधिविधाय ऋषिरवोचत् पाङ्क्तं वा इदᳬ सर्वम् पाङ्क्तेनैव पाङ्क्तᳬ स्पृणोतीति सर्वमेकञ्च ॥ १५ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

पृथिवी, अन्तरिक्षम्, द्यौः, दिशः, अवान्तरदिशः, अग्निः, वायुः, आदित्यः, चन्द्रमाः, नक्षत्राणि, आपः, ओषधयः, वनस्पतयः, आकाशः, आत्मा, इति, अधिभूतम्, अथ, अध्यात्मम्, प्राणः, अपानः, व्यानः, उदानः, समानः, चक्षुः, श्रोत्रम्, मनः, वाक्, त्वक्, चर्म्म,

मांसम्, स्नावा, अस्थि, मज्जा, एतत्, अधिविधाय, ऋषिः, अवोचत्, पाङ्क्तम्, वै, इदम्, सर्वम्, पाङ्क्तेन, एव, पाङ्क्तम्, स्पृणोति, इति, सर्वम्, एकम्, च ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
पृथिवी	पृथ्वीलोक
अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष लोक
द्यौः	स्वर्गलोक
दिशः	दिशा
अवान्तरदिशः	विदिशा यानी चारो कोने
+ एतत्लोकपञ्चकम्	ये पाँच लोकपंचक हैं
अग्निः	अग्नि
वायुः	वायु
आदित्यः	सूर्य
चन्द्रमाः	चन्द्रमा
नक्षत्राणि	नक्षत्र
+ एततद्देवपञ्चकम्	ये पाँच देवपंचक हैं
आपः	जल
ओषधयः	ओषधी
वनस्पतयः	वनस्पति
आकाशः	आकाश
च	और
आत्मा	विराट्रूप
+ एतत् भूतपञ्चकम्	ये पांच भूतपंचक हैं
इति	इस प्रकार तीनों पंचक

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
अधिभूतम्	अधिभूत हैं
अथ	और
प्राणः	प्राण
अपानः	अपान
व्यानः	व्यान
उदानः	उदान
समानः	समान
+ एतत्वायुपञ्चकम्	ये पाँच वायुपंचक हैं
चक्षुः	नेत्र
श्रोत्रम्	कर्ण
मनः	मन
वाक्	वाणी
त्वक्	त्वचा
+ एतत् इन्द्रियपञ्चकम्	ये पाँच इन्द्रियपंचक हैं
च	और
चर्म	चर्म
मांसम्	मांस
स्नावा	नाड़ी
अस्थि	हाड़
मज्जा	मज्जा
+ एतत् धातुपञ्चकम्	ये पाँच धातुपंचक हैं
इति	इस प्रकार ये तीनों पंचक

अध्यात्मम्=अध्यात्म हैं
एतत्=उस पूर्वोक्त अधिभूत और अध्यात्म को
अधिविधाय=कल्पना करके
इदम्=यह
सर्वम्=सब बाह्याभ्यन्तर
वै=निश्चय करके
पाङ्क्तम्=पांक्त अर्थात् पंचात्मक हैं

एवम्=इस प्रकार
विद्वान्=बुद्धिमान् पुरुष
पाङ्क्तम्=अधिभूत बाह्य पंचात्मक को
पाङ्क्तेन=आध्यात्मिक पंचात्मक करके
एव=ही
सर्वम्=सबको
एकम्=एकाकारता से
स्पृणोति=अनुभव करता है
एवम्=ऐसा
ऋषिः=वेद ने
आवोचत्=कहा है ॥

भावार्थ ।

पूर्व अतीन्द्रिय मनोमयत्वादि गुण-विशिष्ट ब्रह्म की उपासना को कहा है, अब इस सप्तम अनुवाक में मन्द अधिकारियों के प्रति स्थूल पृथ्वी आदिकों की पंचात्मक स्वरूप करके उपासना को कहते हैं—

पृथिवीति । पृथ्वी-लोक, अन्तरिक्ष-लोक, स्वर्ग-लोक, प्राची, अवाची, उदीची, प्रतीची चारों दिशा, और अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण, वायुकोण, ईशानकोण चारों अवान्तर दिशा मिलकर ये पाँच लोकपंचक हैं ।

अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र ये पाँच देवपंचक हैं ।

व्रीहि यवादि ओषधी, जल, वृक्षादि वनस्पति, आकाश, और विराट् आत्मा, ये पाँच भूतपंचक हैं ।

इस प्रकार ये तीनों पंचक अधिभूत हैं, अब आध्यात्मिक को कहते हैं—

प्राण इति । प्राण, व्यान, अपान, उदान, समान ये पाँच वायुपंचक हैं ।

हृदय में प्राण का स्थान है, अपान का गुदा स्थान है, समान का

नाभिस्थान है, उदान का कण्ठ स्थान है, और व्यान समग्र शरीर में रहता है, और चक्षु, श्रोत्र, मन, वाक् और त्वक् ये पाँच इन्द्रियपंचक हैं और चर्म, मांस, नाड़ियाँ, हाड़, मज्जा ये पाँच धातुपंचक हैं, इस प्रकार ये तीनों पंकच अध्यात्म हैं, इसलिये अधिभूत और अध्यात्म को लेकर यह सम्पूर्ण जगत् पंचात्मक कहा जाता है, और पृथ्वी आदि लोक तथा अग्नि आदिक देवता भी पंचात्मक कहाते हैं, इस प्रकार पंचात्मकविशिष्ट ब्रह्म की उपासना करने से उपासक विराट् अभिमानी प्रजापति को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

मूलम् ।

ओमिति ब्रह्म ओमितीदꣳ सर्वम् ओमित्येतदनुकृतिर्हस्म वा अप्यों श्रावयेत्याश्रावयन्ति ओमिति सामानि गायन्ति ओꣳ शोमिति शस्त्राणि शꣳसन्ति ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति ओमिति ब्रह्मा प्रसौति ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नुवानीति ब्रह्मैवोपाप्नोति ओं दश ॥ १६ ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

ओम्, इति, ब्रह्म, ओम्, इति, इदम्, सर्वम्, ओम्, इति, एतत्, अनुकृतिः, ह, स्म, वै, अपि, ओम्, श्रावय, इति, आश्रावयन्ति, ओम्, इति, सामानि, गायन्ति, ओम्, शोम्, इति, शस्त्राणि, शंसन्ति, ओम्, इति, अध्वर्युः, प्रतिगरम्, प्रति, गृणाति, ओम्, इति, ब्रह्मा, प्रसौति, ओम्, इति, अग्निहोत्रम्, अनुजानाति, ओम्, इति, ब्राह्मणः, प्रवक्ष्यन्, आह, ब्रह्म, उपाप्नुवानि, इति, ब्रह्म, एव, उपाप्नोति, ओम्, दश ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

+ यतः=चूँकि
सर्वम्=सब
इदम्=यह जगत्
ओम्=ओम्
इति=शब्द करके
व्याप्तम्=व्याप्त है
अतः=इसलिये
ह, स्म, वै=निश्चय करके
ओम्=ओम्
इति=ऐसा
एतत्=यह शब्द
अनुकृतिः=सब वाणी में अनुकरण है अर्थात् प्रतिध्वनि-रूप है
च=और
अपि=यज्ञेषु अपि=यज्ञों बिषे भी
ओम् वै=ओम् प्रसिद्ध है
ओम्=ओम्
श्रावय=सुनाव तू
इति=यह यजुर्वेदीय अध्वर्यु होता जब कहता है
+तदा=तब
आश्रावयन्ति=देवताओं को मन्त्र सुनाते हैं वे यह ऋत्विक् लोग बोलते हैं
च=और
ओम्=ओम् शब्द

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

इति=उच्चारण करके
सामानि=सामवेद को
गायन्ति=गायन करते हैं
च=और
ओम्=ओम्
शोम्=शोम् शब्द
इति=करके
शस्त्राणि=ऋग्वेद की ऋचाओं को
शंसन्ति=उच्चारण करते हैं
च=और
ओम्=ओम् शब्द
इति=उच्चारण करके
अध्वर्युः=यजुर्वेदी
प्रतिगरम्=यजुर्वेद को
प्रतिगृणाति=पठन करता है
च=और
ओम्=ओम्शब्द
इति=उच्चारण करके
ब्रह्मा=ब्रह्मा (यज्ञ बिषे)
प्रसौति=प्रेरणा करता है
च=और
ओम्=ओम् शब्द
इति=उच्चारण करके
अग्निहोत्रम्=अग्निहोत्र को
अनुजानाति=होम करनेकी आज्ञा, होता को देता है
च=और
+यदा=जब

प्रवक्ष्यन्=वेद पढ़ने की इच्छा वाला
ब्राह्मणः=ब्राह्मण
इति=ऐसा विचार करके कि
ब्रह्म=वेद को
उपाप्नुवानि=मैं प्राप्त होजाऊँ
पूर्वम्=आरम्भ विषे
ॐम् इति=ॐम् शब्द को
आह=उच्चारण करता है
तदा=तब
सः=वह ब्राह्मण
ब्रह्म=वेद को
एव=निश्चय करके
उपाप्नोति=प्राप्त होता है
ततः=इसीलिये
ॐम्=ॐम् शब्द
इति=करके
ब्रह्म=शब्द-ब्रह्म को
उपासीत=उपासना करे ॥

भावार्थ ।

पूर्व षष्ठ अनुवाक में किंचित् सूक्ष्मदर्शी मध्यमाधिकारी के प्रति मन आदिक उपाधिक ब्रह्म की उपासना कही है, और सप्तम अनुवाक में स्थूलदर्शी मन्दअधिकारी के लिये पृथ्वी आदि उपाधिक ब्रह्म की उपासना को कहा है, अब उत्तमाधिकारी के लिये ॐकार में ब्रह्म-दृष्टि का विधान करते हैं—

ॐमितीति । 'ॐ' यह जो अक्षर है सो परब्रह्म का वाचक है, और परब्रह्म इसका वाच्य है, वाच्य-वाचक का अभेद होता है, इसलिये ॐकार ब्रह्म-रूप ही है, ऐसा चिन्तन उपासक को करना चाहिये, और यह जो नानाप्रकार की प्रतीतियों का विषय चराऽचरात्मक सम्पूर्ण जगत् है, सो सब ॐकाररूप ही है, और जितना शब्द करके ज्ञात होने योग्य है, वह सब ॐकार करके ही व्याप्त है, क्योंकि वाच्य जो है सो वाचक के ही अधीन होता है, इसलिये सम्पूर्ण जगत् ॐकाररूप ही है, शब्द दो प्रकार का होता है, एक ध्वन्यात्मक, दूसरा वर्णात्मक । यावत् लोक-लोकान्तर में वस्तु है, वह इन शब्दों करके व्याप्त है, और शब्द ही ॐकार है, इसलिये सब वस्तु

ॐकाररूप है, और विना ॐकार के कुछ भी सिद्ध नहीं होता है, अब ॐकार की स्तुति को करते हैं, यह वार्ता लोक में प्रसिद्ध है, जैसे किसी ने कहा-मैं इस काम को करता हूँ, तब दूसरा आगे से ॐ ऐसें कहता है, अर्थात् ऐसा कहा ॐ अक्षर को उच्चारण करके वैदिक-कर्म का प्रारम्भ किया जाता है, और ॐ कह करके वैदिक-कर्म की समाप्ति की जाती है, जब देवताओं के प्रति वेद का मन्त्र पढ़ा जाता है, तो ॐ कह करके पढ़ा जाता है, और जो सुनता है, वह भी ॐ कह करके सुनता है, और यज्ञ में सामवेद के गायन करने वाले ॐकार को ही उच्चारण करके सामवेद की ऋचा का गायन करते हैं, और ॐ यह शब्द उच्चारण करके ऋग्वेद की ऋचाओं का यज्ञ में पाठ करते हैं, अर्थात् यज्ञ के कर्म का कर्ता जोकि अध्वर्यु है, सो शोंसावों इस गीति मंत्र को यज्ञ में पढ़ता है, और ॐ इस अक्षर का उच्चारण करके ब्रह्मा जोकि ऋत्विग् है स्तुति करता है, ॐ इसको उच्चारण करके ही अग्निहोत्र करने की आज्ञा होता को देता है, ॐ शब्द को उच्चारण करके यजुर्वेदी यजुर्वेद के मंत्रों को पढ़ता है और जब ब्राह्मण ॐ उच्चारण करके ही पाठ के आदि में कहता है कि मैं ब्रह्म को प्राप्त होजाऊँ और फिर पाठ करता है, तब वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है, इसलिये ॐ शब्द करके ब्रह्म की उपासना करे ॥ १६ ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

मूलम् ।

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च अग्निहोत्रञ्च स्वाध्यायप्रवचने च अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च मानुषञ्च स्वाध्यायप्रवचने च प्रजा च

स्वाध्यायप्रवचने च प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः तप इति तपो नित्यः पौरुशिष्टिः स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥ १७ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

ऋतम्, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, सत्यम्, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, तपः, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, दमः, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, शमः, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, अग्नयः, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, अग्निहोत्रम्, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, अतिथयः, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, मानुषम्, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, प्रजा, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, प्रजनः, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, प्रजातिः, च, स्वाध्यायप्रवचने, च, सत्यम्, इति, सत्यवचाः, राथीतरः, तपः, इति, तपः, नित्यः, पौरुशिष्टिः, स्वाध्यायप्रवचने, एव, इति, नाकः, मौद्गल्यः, तत्, हि, तपः, तत्, हि, तपः ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

ऋतम्=वेद के सूक्ष्म अर्थ का विचार करना
च=और
सत्यम्=सत्य बोलना
च=और
स्वाध्याय-प्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ाना
च=और
तपः=तप करना
च=और
स्वाध्याय-प्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ाना
च=और
तपः=तप करना
च=और
स्वाध्याय-प्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ाना
च=और
दमः=बाह्य इन्द्रियों का रोकना
च=और
स्वाध्याय-प्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ाना

च=और

शमः=मन का रोकना

च=और

स्वाध्यायप्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ाना

च=और

अग्नयः=अग्नि धारणकरना

च=और

स्वाध्यायप्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ाना

च=और

अग्निहोत्रम्=अग्निहोत्र करना

च=और

स्वाध्यायप्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ना

च=और

अतिथयः=अभ्यागतों का पूजन करना

च=और

स्वाध्यायप्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ाना

च=और

मानुषम्=लौकिक व्यवहार अर्थात् विवाह आदि कर्म करना

च=और

स्वाध्यायप्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ाना

च=और

प्रजा=सन्तति का उत्पन्न करना

च=और

स्वाध्यायप्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ाना

च=और

प्रजनः=स्वभार्या विषे गर्भ-दान ऋतु-काल में देना

च=और

स्वाध्यायप्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ाना

च=और

प्रजातिः=विवाह पुत्र-पौत्र कीउत्पत्तिके लिये करना

च=और

स्वाध्यायप्रवचने=वेद का पढ़ना और पढ़ाना

+ एतानिवेद-विहितकर्माणि=ये सब ऊपर लिखे हुये वेद-विहित कर्म

अवश्यकर्तव्यानि=अवश्य करने योग्य हैं

च=और

राथीतरः=राथीतर गोत्र में उत्पन्न हुवा

सत्यवचने=सत्यवचा नामक ऋषि

सत्यम्=सत्य को

इति=ही

मनुते=श्रेष्ठ मानता है

पौरुशिष्टिः=पुरुशिष्ट गोत्र में उत्पन्न हुवा ॥

भावार्थ ।

अब उपासक के नियमों को विधान करते हैं—वेद के सूक्ष्म अर्थ का जो निश्चय करना है, उसका नाम ऋत है; और अध्ययन किया हुआ जो वेद है, उसका जो प्रतिदिन पाठ करना है, इसीका नाम स्वाध्याय है; और वेद के अर्थ का जो व्याख्यान करना है, उसका नाम प्रवचन है; और जिस वार्त्ता को वेद और शास्त्र करके और युक्तियों करके निश्चय करना है, वह यथार्थ कहा जाता है; सत्य-भाषण और कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत तप कहे जाते हैं।

चक्षुरादिक इन्द्रियों को बाह्य-विषयों से हटाने का नाम दम है, और मन को निषिद्ध विषय के चिंतन करने से हटाने का नाम शम है, और गार्हपत्यादि अग्नियों का स्थापन करना अर्थात् प्रातःकाल और सायंकाल अग्निहोत्र कर्म करना नित्य कर्त्तव्य है, और घर में आये हुये अतिथियों की पूजा करना और विवाहादिकों में वधू आदिकों का पूजन करना कर्त्तव्य है, इसी का नाम मानुष्य कर्त्तव्य है, और पुत्र की उत्पत्ति के लिये गर्भाधानादि संस्कार का नाम प्रजा कर्त्तव्य है, और पुत्रोत्पत्ति के लिये ऋतु-काल में स्वभार्या के पास जाने का नाम प्रजन कर्त्तव्य है, और अपने वर्णाश्रम के अनुसार पुत्र की उत्पत्ति का नाम प्रजाति है, ये सब कर्म कर्त्तव्य हैं, तात्पर्य सबका यह है कि वेद पढ़े और पढ़ावे, वेद के सूक्ष्म अर्थ को विचार करे, तप करे, बाह्य इन्द्रियों को रोके, मन को रोके, हवन करे, अग्नि धारण करे, अभ्यागतों की पूजा करे, विवाह करे, सन्तति उत्पन्न करे, अपनी भार्या से ऋतुकाल विषे भोग करे।

राथीतर आचार्य ऐसा मानता है कि सत्यभाषण सदा करना चाहिये, और सत्यभाषण ही उत्तम कर्म है, पौरुशिष्टि आचार्य नित्य तप करता था, इसलिये वह कहता है कि तप ही उत्तम कर्म है, और मौद्गल्य आचार्य

ऐसा मानता है कि वेद का सदा पढ़ना और पढ़ाना ही उत्तम कर्म है, इसलिये ऊपर के लिखे हुये कर्म अवश्य नित्य कर्त्तव्य हैं ॥ १७ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

मूलम् ।

अहं वृक्षस्य रेरिवा कीर्त्तिः पृष्ठं गिरेरिव ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि द्रविणꣳ सुवर्चसम् सुमेधा अमृतोऽक्षितः इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् अहꣳ षट्॥१८॥

इति दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

अहम्, वृक्षस्य, रेरिवा, कीर्त्तिः, पृष्ठम्, गिरेः, इव, ऊर्ध्वपवित्रः, वाजिनि, इव, स्वमृतम्, अस्मि, द्रविणम्, सुवर्चसम्, सुमेधाः, अमृतोऽक्षितः, इति, त्रिशङ्कोः, वेदानुवचनम् ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

अहम्=मैं
वृक्षस्य=संसार-रूपी वृक्ष का
रेरिवा=प्रेरक अन्तर्यामी
अस्मि=हूँ
च=और
मे=मेरा
कीर्त्तिः=यश
गिरेः=पर्वत के
पृष्ठम्=शिखर
इव=समान
उन्नतम्=ऊँचा है
च=और
इव=जैसे
वाजिनि=सूर्य विषे

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

स्वमृतम्=शुद्ध अमृत है
तद्वत्=वैसे ही
अहम्=मैं
ऊर्ध्वपवित्रः=निर्मल-ब्रह्म ज्ञान-स्वरूप
अस्मि=हूँ
च=और
सुवर्चसम्=प्रकाशमान
द्रविणम्=ब्रह्म-रूपी द्रव्य
मया=मुझ करके
प्राप्तम्=पाया गया है
च=और
अहम्=मैं

सुमेधाः= { कार्य-कारणात्मक जगत् का आदि-मध्यांत जाननेवाला

अस्मि=हूँ

अतएव=इसी कारण

अहम्=मैं

अमृतोक्षितः=अमृत से सिंचित किया हुआ

अस्मि=हूँ

इति=इस प्रकार

त्रिशङ्कोः=त्रिशंकु मुनि का

वेदानुवचनम्=आत्मानुभव के पश्चात् यह वाक्य

अस्ति= { है (जैसे वामदेव ऋषि का अनुभव-वाक्य गर्भ बिषे ही उत्पन्न हुआ था)॥

भावार्थ ।

अहमिति । जिसका तत्त्वज्ञान करके छेदन किया जाय उसका नाम वृक्ष है, सो संसार-रूपी वृक्ष का तत्त्व-ज्ञान करके छेदन हो सकता है, इसलिये ज्ञान-वैराग्य-रूपी शस्त्र करके संसार-रूपी वृक्ष का मैं छेदन करनेवाला हूँ, और जब मैं संसार-रूपी वृक्ष का छेदन कर देऊंगा तब मेरी कीर्त्ति पर्वत के शिखर के ऐसी अत्यंत ऊँची होगी, और जैसे सूर्य बिषे शुद्ध अमृत है वैसे मैं निर्मल ज्ञान-स्वरूप ब्रह्म-रूप हूँ, क्योंकि प्रकाशमान ब्रह्म-रूपी द्रव्य मुझ करके पाया गया है, मैं कार्य-कारणात्मक जगत् को भली प्रकार जानता हूँ, मैं अमृत-रूपी तत्त्व-ज्ञान को प्राप्त हुआ हूँ, धारणा शक्तिवाला मैं ही हूँ, ऐसा अनुभव त्रिशंकु मुनि का है ॥ १८ ॥ *

इति दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

मूलम् ।

वेदमनूच्याचार्य्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति सत्यं वद धर्म्मञ्चर स्वाध्यायान्मा प्रमदः आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः सत्यान्न प्रमदि-

---

* शब्दार्थ इस प्रकार स्पष्ट है कि भावार्थ की आवश्यकता नहीं, इसी विचार से भावार्थ सूक्ष्म लिखा गया है ।

तव्यम् धर्म्मान्न प्रमदितव्यम् कुशलान्न प्रमदितव्यम् भूत्यै न प्रमदितव्यम् स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् देवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ १९ ॥ मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्य्यदेवो भव अतिथिदेवो भव यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ॥ २० ॥ ये के चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम् श्रद्धया देयम् अश्रद्धयाऽदेयम् श्रिया देयम् ह्रिया देयम् भिया देयम् संविदा देयम् अथ यदि ते कर्म्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ॥२१॥ ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः युक्ता आयुक्ता अलूक्षा धर्म्मकामाः स्युः यथा ते तत्र वर्त्तेरन् तथा तत्र वर्त्तेथाः अथाभ्याख्यातेषु ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्म्मकामाः स्युः यथा ते तेषु वर्त्तेरन् तथा तेषु वर्त्तेथाः एष आदेशः एष उपदेशः एषा वेदोपनिषद् एतदनुशासनम् एवमुपासितव्यम् एवमु चैतदुपास्यम् स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् तानि त्वयोपास्यानि विचिकित्सा वा स्यात्तेषु वर्त्तेरन् ॥ २२ ॥

इत्येकादशोऽनुवाकः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

वेदम्, अनूच्य, आचार्य्यः, अन्तेवासिनम्, अनुशास्ति, सत्यम्, वद, धर्म्मम्, चर, स्वाध्यायात्, मा प्रमदः, आचार्य्याय, प्रियम्, धनम्, आहृत्य, प्रजातन्तुम्, मा व्यवच्छेत्सीः, सत्यात्, न, प्रमदितव्यम्, धर्म्मात्, न, प्रमदितव्यम्, कुशलात्, न, प्रमदितव्यम्, भूत्यै,

न, प्रमदितव्यम्, स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम्, न, प्रमदितव्यम्, देवपितृकार्य्याभ्याम्, न, प्रमदितव्यम्, मातृदेवः, भव, पितृदेवः, भव, आचार्य्यदेवः, भव, अतिथिदेवः, भव, यानि, अनवद्यानि, कर्म्माणि, तानि, सेवितव्यानि, नो, इतराणि, यानि, अस्माकम्, सुचरितानि, तानि, त्वया, उपास्यानि, नो, इतराणि, ये, के, च, अस्मच्छ्रेयांसः, ब्राह्मणाः, तेषाम्, त्वया, आसनेन, प्रश्वसितव्यम्, श्रद्धया, देयम्, अश्रद्धया, अदेयम्, श्रिया, देयम्, ह्रिया, देयम्, भिया, देयम्, संविदा, देयम्, अथ, यदि, ते, कर्म्मविचिकित्सा, वा, वृत्तविचिकित्सा, वा, स्यात्, ये, तत्र, ब्राह्मणाः, सम्मर्शिनः, युक्ताः, आयुक्ताः, अलूक्षाः, धर्म्मकामाः, स्युः, यथा, ते, तत्र, वर्त्तेरन्, तथा, तत्र, वर्त्तेथाः, अथ, अभ्याख्यातेषु, ये, तत्र, ब्राह्मणाः, सम्मर्शिनः, युक्ताः, आयुक्ताः, अलूक्षाः, धर्म्मकामाः, स्युः, यथा, ते, तेषु, वर्त्तेरन्, तथा, तेषु, वर्त्तेथाः, एषः, आदेशः, एषः, उपदेशः, एषा, वेदोपनिषत्, एतत्, अनुशासनम्, एवम्, उपासितव्यम्, एवम्, उ, च, एतत्, उपास्यम्, स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम्, न, प्रमदितव्यम्, तानि, त्वया, उपास्यानि, विचिकित्सा, वा, स्यात्, तेषु, वर्त्तेरन् ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
आचार्य्यः	गुरु
अन्तेवासिनम्	शिष्य को
वेदम्	वेद
अनूच्य	पढ़ाकर
अनुशास्ति	कर्त्तव्य की शिक्षा देता है
हे शिष्य	हे सौम्य
त्वम्	तू
सत्यम्	सत्य

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
वद	बोल
धर्मम्	धर्म
चर	कर
स्वाध्यायात्	वेद-पाठ से
मा प्रमदः	प्रमाद याने भूल मत कर
आचार्याय	गुरु के लिये
धनम्	धन को अर्थात् गुरु-दक्षिणा को

आहृत्य=देकर
प्रजातन्तुम्=संतान-रूपी तंतु को
माव्यवच्छेत्सीः=उच्छेद मत कर अर्थात् वंशरूपी तागे को मत तोड़, अर्थात् गृहस्थाश्रम कर
सत्यात्=सत्य से
प्रमदितव्यम्=प्रमाद करना योग्य
न=नहीं है
धर्मात्=धर्म से
प्रमदितव्यम्=प्रमाद करना योग्य
न=नहीं है
कुशलात्=देह-रक्षार्थ कर्म से
प्रमदितव्यम्=प्रमाद करना योग्य
न=नहीं है
भूत्यै=संपत्ति के लिये
प्रमदितव्यम्=प्रमाद करना योग्य
न=नहीं है
स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम्=वेद के पठन और पाठन से
प्रमदितव्यम्=प्रमाद करना योग्य
न=नहीं है
देवपितृकार्याभ्याम्=यज्ञ, श्राद्ध, तर्पणादि कर्म से
प्रमदितव्यम्=प्रमाद करना योग्य
न=नहीं है
हे शिष्य=हे सौम्य
त्वाम्=तू
मातृदेवः=माता को देवता तुल्य माननेवाला
भव=हो

पितृदेवः=पिता को देवता-तुल्य माननेवाला
भव=हो
आचार्यदेवः=आचार्य को देवता के तुल्य पूजन करनेवाला
भव=हो
अतिथिदेवः=अभ्यागतों को देवता-तुल्य पूजन करनेवाला
भव=हो
यानि=जो
अनवद्यानि=अनिन्दित
कर्माणि=कर्म हैं
तानि=वे
त्वया=तुझ करके
सेवितव्यानि=सेवन करने योग्य हैं
इतराणि=निन्दित कर्म
नो=सेवन करने योग्य नहीं हैं
च=और
यानि=जो कर्म
अस्माकम्=हमारे
सुचरितानि=अच्छी तरह से सेवन किये हुये हैं
तानि=वे कर्म
त्वया=तुझ करके
उपास्यानि=उपासना करने योग्य हैं
इतराणि=हमारे त्याग किये हुये कर्म

त्वया=तुझ करके
नो=नहीं सेवन करने-
योग्य हैं
च=और
ये=जो
के=कोई
ब्राह्मणाः=ब्राह्मण
अस्मच्छ्रेयांसः={ आचार्यादि कर्म करके हमसे विशेष हैं
तेषाम्=उनका
आसनेन=आसनदानादि
सत्कार से
त्वया=तुझ करके
प्रश्वसितव्यम्=आश्वासन करना
योग्य है
श्रद्धया=श्रद्धा करके
देयम्=दान करना चाहिये
अश्रद्धया=अश्रद्धा करके
अदेयम्=दान नहीं देनाचाहिये
श्रिया={ आत्मश्री के अनुसार अर्थात् यथाशक्ति
देयम्=देना चाहिये
ह्रिया=लज्जा करके
देयम्=देना योग्य है
भिया=डर करके
देयम्=देना योग्य है
संविदा={ मित्रादि कार्य करके अर्थात् मित्रप्रभृति के कार्य में
देयम्=देना योग्य है

अथ=जब
यदि=कभी
ते=तुझको
कर्मविचिकित्सा=} श्रौत-स्मार्त कर्म बिषे संदेह
वा=अथवा
वृत्तिविचिकित्सा=} आचार लक्षणवृत्त बिषे संदेह
स्यात्=होवे
तदा=तब
तत्र=उस समय में
ये=जो
सम्मर्शिनः=विचारवान्
युक्ताः=लौकिक कर्म-युक्त
आयुक्ताः=शास्त्रोक्त कर्म-युक्त
अलूक्षाः=अक्रूरबुद्धिवाले
धर्मकामाः=धर्मबिषे कामना
रखने वाले
ब्राह्मणाः=ब्राह्मण
स्युः=होवें
ते=वे
यथा=जैसे
तत्र=उस संशय में
वर्त्तेरन्=बर्ताव करें
तत्र=उस संशय बिषे
त्वम्=तू
अपि=भी
तथा=वैसा ही
वर्त्तेथाः=बर्ताव कर
अथ=और
तत्र=उन

अभ्याख्यातेषु=अति प्रसिद्ध ब्राह्मणों बिषे
ये=जो
ब्राह्मणाः=ब्राह्मण
सम्मर्शिनः=विचारवान्
युक्ताः=लौकिक-कर्म-युक्त
आयुक्ताः=वैदिक-कर्मयुक्त
अलूक्षाः=अक्रूरबुद्धि वाले
धर्मकामाः=धर्म बिषे कामना रखनेवाले
स्युः=होवें
ते=वे
यथा=जैसे
तेषु=उन संशयों बिषे
वर्त्तेरन्=बर्तें
तथा=वैसा ही
त्वम्=तू
अपि=भी
तेषु=उन संशयों बिषे
वर्त्तेथाः=बर्ताव कर
एषः=यही
आदेशः=बुद्धि है
एषः=यही
उपदेशः=पुत्र, शिष्य आदिकों को उपदेश है
एषा=यही
वेदोपनिषत्=वेद का सूक्ष्म और गोप्य अर्थ है
एतत्=यही
अनुशासनम्=ईश्वर-वचन है
एवम्=इस प्रकार
उपासितव्यम्=उपासना करने योग्य है
च=और
उ=निश्चय करके
एवम्=इस प्रकार
एतत्=यह
उपास्यम्=उपासना करनेयोग्य है॥

भावार्थ ।

वेदमिति । आचार्य शिष्य को प्रथम उपनयन कराकर, वेद का अध्ययन कराते हैं, पश्चात् वेद के अर्थ को शिष्य के प्रति इस प्रकार ग्रहण कराते हैं—

हे शिष्य ! सदैव तुम सत्य-भाषण करो, कदापि मिथ्याभाषण न करो, और प्रतिदिन वेद-विहित धर्म का ही तुम आचरण करो, और वेद के अध्ययन से तुम प्रमाद कदापि न करो, और विद्या की प्राप्ति के लिये आचार्य के प्रति धन को ला करके देवो, और विद्या की समाप्ति के अनंतर आचार्य की आज्ञा को लेकर विवाह करके संतान

उत्पन्न करो, और यदि विवाह करने से पुत्र उत्पन्न न हो, तो पुत्रेष्टियज्ञ करके पुत्र की उत्पत्ति के लिये यत्न करो ।

प्र०—मुक्ति के साधनों के प्रकरण में प्रजा की उत्पत्ति का निरूपण करना क्या असंगत है ?

उ०—असंगत नहीं है, क्योंकि पितृ-ऋण भी मोक्ष का प्रतिबंधक है, उससे छूटना भी मुक्ति का एक साधन ही है । सो प्रजा के उत्पन्न करने से ही पुरुष पितृ-ऋण से छूटता है, और आचार्य फिर शिष्य के प्रति कहते हैं, हे शिष्य ! सत्य-भाषण से कभी भी तुम प्रमाद न करना, धर्म के आचरण से कभी भी तुम प्रमाद न करना, सर्वदा काल धर्म का ही तुम अनुष्ठान करना, कुशलता से अर्थात् शरीर की रक्षा के करने वाले जो कर्म हैं, उनसे भी कभी तुम प्रमाद न करना, और विभूति अर्थात् ऐश्वर्य के प्राप्त करने वाले जो कर्म हैं, उनसे भी तुम प्रमाद न करना, और वेद के पढ़ने पढ़ाने से भी तुम कभी प्रमाद न करना, और देव-कार्य जोकि यज्ञादिक हैं और पितृ-कार्य जोकि श्राद्धादिक हैं, इनसे भी तुम प्रमाद न करना ॥ १९ ॥

मातृदेव इति । माता को देवता जानना, और देवता की तरह माता का पूजन तुम करना, पिता को देवता जान करके पूजा करना, आचार्य को देवता जानकर पूजन करना, अतिथि को देवता जान करके पूजन करना ।

दो प्रकार के कर्म हैं, एक निंदित कर्म हैं, दूसरे अनिंदित कर्म हैं, दोनों में से जो कर्म लोक-प्रसिद्ध शिष्टाचार-रूप अनिंदित हैं, उन्हींका आचरण तुम करना, निंदित कर्मों का आचरण कभी तुम न करना, जो कर्म आचार्यों के सुचरित हैं, अर्थात् श्रुति-स्मृति से अविरुद्ध हैं, उन्हींका आचरण तुम करना, इतर कर्मों का आचरण मत करना ॥ २० ॥

ये के चेति । जो लोक में प्रसिद्ध ब्राह्मण हैं, और जो हमारे से अति श्रेष्ठ हैं, उन ब्राह्मणों की तुम आसनादि प्रदान करके सेवा करना, और वे ब्राह्मण जोकि तुमको उपदेश करें उनके उपदेश को भली-प्रकार तुम ग्रहण करना, और श्रद्धा करके अर्थात् आस्तिक बुद्धि करके उनके प्रति अन्नादिकों को देना, अश्रद्धा करके न देना, क्योंकि श्रद्धा से रहित जो दान है, उसका किंचित् भी फल नहीं होता है, इसलिये श्रद्धा से युक्त हो करके ही देना और आस्तिक बुद्धि करके जो दान दिया जाता है, वह श्रिया दान कहा जाता है, और लज्जा करके दान देना और शास्त्र के भय करके देना और विवेक करके अर्थात् अधिकारी को विचार करके दान देना ॥ २१ ॥

अथेति । आचार्य शिष्य के प्रति कहते हैं, जब तुम्हारे को श्रौत-कर्म में अथवा स्मार्त-कर्म में संशय उत्पन्न हो, जैसे कि—उदिते जुहोति, अनुदिते जुहोति । ये दो श्रुति-वाक्य हैं, एक तो कहता है कि सूर्य के उदय होने पर अग्निहोत्र-कर्म करना चाहिये, दूसरा कहता है कि सूर्य के उदय से पहिले ही अग्निहोत्र-कर्म करना चाहिये । अब यहाँ पर संदेह होता है कि कौन से वाक्य के अनुसार करना चाहिये, और स्मार्त-कर्म संध्या में कहीं तो संध्या के देवता की मूर्ति पुरुष-रूप करके कही है, और कहीं स्त्री-रूप करके कही है, यहाँ पर भी संदेह होता है कि किस रूप का ध्यान करना चाहिये । एक कर्मविचिकित्सा कही जाती है, दूसरी वृत्तविचिकित्सा कही जाती है ।

वृत्त नाम कुल की परंपरा करके जो कर्म चला आता है, जैसे कहीं आज्ञा है कि मातुल-कन्या के साथ विवाह करना चाहिये, और मांस भक्षण करना चाहिये, और कहीं लिखा है नहीं करना चाहिये, हे शिष्य ! जब तुम्हारे मन में इस तरह के संशय उत्पन्न हों, तब तुम वैसे ही कर्म में प्रवृत्त हो, जैसे प्रसिद्ध वेद के वेत्ता ब्राह्मण, नित्य

विचारवान्, समदर्शी, क्रोधादिकों से रहित, शांत स्वभाववाले, धर्म की कामना से संयुक्त, नित्य-नैमित्तिक कर्मों में प्रवृत्त होते हैं ॥

अथेति । अब और उपदेश को आचार्य करते हैं, हे शिष्य ! यदि पातक की शंका करके दूषित पुरुषों में तुमको संशय हो कि इनके साथ व्यवहार करना चाहिये या नहीं ? तब उस देश में जो ब्राह्मण हों, वे जिस प्रकार उनके साथ व्यवहार करते हों, वैसे ही तुम भी करो, वे ब्राह्मण कैसे हों कि विचारवान् हों, और नित्य-नैमित्तिक कर्मों में प्रवृत्त हों, और स्वतन्त्र हों, और क्रोध आदिकों से रहित हों, और धर्म की कामना से युक्त हों ॥ ५ ॥

एष इति ॥ हे शिष्य ! जैसे राजा अपने भृत्यों को आज्ञा करता है, और वैसे ही वैदिक कर्मों के करनेवालों को वेद भी आज्ञा करता है, और सत्य भाषण करने का ही वेद का मुख्य उपदेश है, यह वेद में विधिमंत्र है, पूर्वोक्त वेद-वाक्य सब ईश्वर की आज्ञाएँ हैं, यह सब उपासना और अनुष्ठान करने के योग्य हैं ॥ २२ ॥

इत्येकादशोऽनुवाकः ॥ ११ ॥

मूलम् ।

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् ऋतमवादिषम् सत्यमवादिषम् तन्मामावीत् तद्वक्तारमावीत् आवीन्माम् आवीद्वक्तारम् सत्यमवादिषं पञ्च च ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ २३ ॥

इति शिक्षाध्यायः प्रथमावल्ली ॥

पदच्छेदः ।

शम्, नः, मित्रः शम्, वरुणः, शम्, नः, भवतु, अर्य्यमा, शम्,

नः, इन्द्रः, बृहस्पतिः, शम्, नः, विष्णुः, उरुक्रमः, नमः, ब्रह्मणे, नमः, ते, वायो, त्वम्, एव, प्रत्यक्षम्, ब्रह्म, असि, त्वाम् एव, प्रत्यक्षम्, ब्रह्म अवादिषम्, ऋतम्, अवादिषम्, सत्यम्, अवादिषम्, तत्, माम्, आवीत् तत्, वक्तारम्, आवीत्, आवीत्, माम्, आवीत्, वक्तारम्, ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

मित्रः=प्राण और दिन अभिमानी देवता
नः=हमको
शम्=सुखकारी
भवतु=होवें
वरुणः=अपान और रात्रि अभिमानी देवता
नः=हमको
शम्=सुखकारी
भवतु=होवें
अर्यमा=नेत्र और सूर्य अभिमानी देवता
नः=हमको
शम्=सुखकारी
भवतु=होवें
इन्द्रः=बल-अभिमानी देवता
नः=हमको
शम्=सुखकारी
भवतु=होवें
बृहस्पतिः=वाणी और बुद्धि अभिमानी देवता
नः=हमको
शम्=सुखकारी

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

भवतु=होवें
उरुक्रमः=बढ़ानेवाला है तीन पाद का जो राजाबलि के यज्ञ बिषे ऐसा
विष्णुः=चरणों का अभिमानी देवता
नः=हम को
शम्=सुखकारी
भवतु=होवे
ब्रह्मणे=व्यापक है जो ऐसे ब्रह्म के लिये
नमः=नमस्कार है
वायो=हे वायुदेवता
ते=तेरे अर्थ
नमः=नमस्कार है
त्वम्=तू
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष
ब्रह्म=ब्रह्म
असि=है
त्वाम्=तुझको
एव=ही
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष
ब्रह्म=ब्रह्म

अवादिषम्=मैंने कहा है
त्वाम्=तुझको
एव=ही
ऋतम्=निश्चयात्मक बुद्धि
अवादिषम्=मैंने कहा है
त्वाम्=तुझको
एव=ही
सत्यम्=सत्य
अवादिषम्=मैंने कहा है
तत्=उस वायु-रूप ब्रह्म ने
माम्=मुझ विद्यार्थी को
आवीत्= { रक्षित किया है, अर्थात् विद्या से संयुक्त किया है
तत्=उस वायु-रूप ब्रह्म ने
वक्तारम्=आचार्य अर्थात् गुरु को
आवीत्= { रक्षित किया है अर्थात् वक्तृत्व-शक्ति से युक्त किया है
माम्=मुझको
आवीत्=उसने रक्षित किया है
वक्तारम्=आचार्य को
आवीत्=उसने रक्षित किया है
ॐशान्तिः= { आध्यात्मिक विघ्नों से शान्ति होवे
शान्तिः= { आधिभौतिक विघ्नों से शान्ति होवे
शान्तिः= { आधिदैविक विघ्नों से शान्ति होवे ॥

भावार्थ ।

ॐ शन्नो मित्रः शं वरुणः । इस शान्ति-पाठ का अर्थ पहिले कर आये हैं, वही अर्थ यहाँ पर भी जान लेना चाहिये, दुबारा लिखने की जरूरत नहीं है, शब्दार्थ ऊपर दिया है वह इसी प्रकार स्पष्ट है ॥

इति शिक्षावल्ली समाप्ता ॥ १ ॥

मूलम् ।

हरिः ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

पदच्छेदः ।

सह, नौ, अवतु, सह, नौ, भुनक्तु, सह, वीर्यम्, करवावहै, तेजस्विनौ, अधीतम्, अस्तु, मा, विद्विषावहै, ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

+ सः=वह ईश्वर
नौ=हम दोनों को अर्थात् गुरु और शिष्य को
सह=साथ
+ एव=ही
अवतु=रक्षा करे
नौ=हम दोनों को
सह=साथ
+ एव=ही
भुनक्तु=भोग प्राप्त करे
+ आवाम्=हम दोनों
सह=साथ
+ एव=ही
वीर्यम्=विद्या-दान और विद्या-ग्रहण-सामर्थ्य को

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

करवावहै=प्राप्त होवें
नौ=हम दोनों का
अधीतम्=पढ़ा हुआ
तेजस्वि=अर्थ ज्ञान योग्य अर्थात् सफल
अस्तु=होवे
+ आवाम्=हम दोनों
मा विद्विषावहै=पठन-पाठन में प्रमाद-रूप विद्वेष को न प्राप्त होवें
ॐ शान्तिः=आध्यात्मिक
शान्तिः=आधिभौतिक
शान्तिः=आधिदैविक, ये त्रिविध ताप हमारे शान्त होवें ॥

भावार्थ ।

अब वक्ष्यमाण परा-विद्या की प्राप्ति के लिये और विघ्नों की शान्ति के लिये प्रथम शान्ति-मंत्र के अर्थ को कहते हैं—

सहेति । परमेश्वर हम दोनों अर्थात् आचार्य और शिष्य के हृदय में ब्रह्म-विद्या के स्वरूप को प्रकाश करके रक्षा करे परमेश्वर हम दोनों को विद्या के फल को प्राप्त करे, वह परमेश्वर हम दोनों की ब्रह्म-विद्या-कृत सामर्थ्य को बढ़ावे, हम दोनों अतिशय करके तेजस्वी

होवें, हम दोनों में प्रमाद करके परस्पर द्वेष कभी न होवे, हम दोनों की आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक विघ्नों से शान्ति होवे ॥ ओं शांतिः, शांतिः शांतिः ॥

मूलम् ।

ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम् तदेषाऽभ्युक्ता सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नम्, अन्नाद्रेतः, रेतसः पुरुषः, स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः तस्येदमेव शिरः अयं दक्षिणः पक्षः अयमुत्तरः पक्ष अयमात्मा इदं पुच्छं प्रतिष्ठा तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मवित्, आप्नोति, परम्, तत्, एषा, अभ्युक्ता, सत्यम्, ज्ञानम्, अनन्तम्, ब्रह्म यः, वेद, निहितम्, गुहायाम्, परमे, व्योमन्, सः, अश्नुते, सर्वान्, कामान्, सह, ब्रह्मणा, विपश्चिता, इति, तस्मात्, वै, एतस्मात्, आत्मनः, आकाशः, सम्भूतः, आकाशात्, वायुः, वायोः, अग्निः, अग्नेः, आपः, अद्भ्यः, पृथिवी, पृथिव्याः, ओषधयः, ओषधीभ्यः, अन्नम्, अन्नात्, रेतः, रेतसः, पुरुष, सः, वै, एषः, पुरुषः, अन्नरसमयः, तस्य, इदम्, एव, शिरः, अयम्, दक्षिणः, पक्षः, अयम्, उत्तरः, पक्षः, अयम्, आत्मा, इदम्, पुच्छम्, प्रतिष्ठा, तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

ब्रह्मवित्=ब्रह्म-वेत्ता
परम्=निरतिशय ब्रह्म को
आप्नोति=प्राप्त होता है अर्थात् स्वयं ब्रह्मरूप होजाता है

तत्=तत्र=उस ब्रह्म के ज्ञान बिषे
एषा=यह ऋचा
अभ्युक्ता=वेद ने कही है कि
सत्यम्=विकार-शून्य
ज्ञानम्=ज्ञान-स्वरूप
अनन्तम्=त्रिविध परिच्छेद-शून्य अर्थात् काल, दिक्, और देश के अवधि से शून्य
इति=ऐसा
ब्रह्म=ब्रह्म है

परमे=उत्कृष्ट
व्योमन्=हृदयाकाश में
गुहायाम्=बुद्धि-रूपी गुहा बिषे
+ यत्=जो
निहितम्=साक्षिरूप से स्थित है
+ तत्=उस ब्रह्म को
यः=जो
वेद=जानता है
सः=वह
विपश्चिता=सर्वज्ञ

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

ब्रह्मणा=ब्रह्म-स्वरूप
सहैव=एककाल बिषे ही अर्थात् तत्कालही
सर्वान्=संपूर्ण
कामान्=कामनाओं को
अश्नुते=प्राप्त होता है अर्थात् सर्वात्मा होजाता है

तस्मात्=उस
एतस्मात्=उस पूर्वोक्त
आत्मनः=आत्मा से
आकाशः=आकाश, शब्द-गुणवाला
वै=प्रसिद्ध
सम्भूतः=उत्पन्न हुआ है

आकाशात्=आकाश से
वायुः=वायु, शब्द-स्पर्श-गुणवाला
सम्भूतः=उत्पन्न हुआ है

वायोः=वायु से
अग्निः=अग्नि, शब्द-स्पर्श-रूप गुणवाला
सम्भूतः=उत्पन्न हुआ है

अग्नेः=अग्नि से
आपः=जल, शब्द-स्पर्श-रूप-रस गुण वाले

सम्भूताः=उत्पन्न हुये हैं
अद्भ्यः=जलों से
पृथिवी=पृथिवी, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध गुणवाली
सम्भूता=उत्पन्न हुई है
पृथिव्याः=पृथिवी से
ओषधयः=अन्न-वृक्ष
सम्भूताः=उत्पन्न हुये हैं
ओषधीभ्यः=अन्न-वृक्षों से
अन्नम्=अन्न
सम्भूतम्=उत्पन्न हुआ है
अन्नात्=वीर्य-रूप अन्न से
पुरुषः=पुरुष
सम्भूतः=उत्पन्न होता है
एषः=यह
वै=प्रसिद्ध है कि
सः पुरुषः=वह पुरुष
अन्नरसमयः=अन्न-रस से
अस्ति=सिद्ध है अर्थात् उत्पन्न हुआ है
तस्य=उस पुरुष का
इदम्=यह
शिरः=शिर है
अयम्=यह
दक्षिणः=दहना
पक्षः=भुजा है
अयम्=यह
उत्तरः=वाम
पक्षः=भुजा है
अयम् आत्मा=यह कंठ से कटिपर्यंत अंगीमध्यभाग आत्मा है
इदम्=यह कटि से नीचे पादतल पर्यंत
पुच्छम्=पूँछ है
तत्=वह पूँछ
प्रतिष्ठा=ऊर्ध्व देह का आधार है
तत्=तत्र=ऐसे अन्नमय कोश विषे
अपि=ही
एषः=यह आगेवाला
श्लोकः=मंत्र
भवति=प्रमाण है ॥

भावार्थ ।

ओमिति । पूर्व वल्ली में उपासना का निरूपण किया है, किंतु केवल उपासना से जन्म-मरण-रूपी संसार का नाश नहीं होता है, किंतु संपूर्ण अनर्थों का बीज-भूत अविद्या है, उसके नाश होने से ही संसार-रूपी बीज का नाश होता है, इसलिये अब अविद्या का नाशक आत्मज्ञान है, उसी को श्रुति उपदेश करती है 'ब्रह्मविदाप्नोतीति'

जो वस्तु सबसे बड़ी हो, अर्थात् जगत् जिसके अन्तर्भूत हो, उसी का नाम ब्रह्म है, उसी व्यापक ब्रह्म को जो कोई अपना आत्मा करके जानता है, उसीका नाम ब्रह्मवित् है, वह ब्रह्मवित् ही देह-त्याग के अनंतर ब्रह्म को प्राप्त होता है, अर्थात् ब्रह्म में लय होकर ब्रह्म-रूप हो जाता है, इसी अर्थ को और भी श्रुति कहती हैं 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' जो ब्रह्म को जानता है, वही ब्रह्म-रूप होता है, इसी वार्ता को मंत्र ने भी कहा है 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' वह ब्रह्म सद्रूप है, ज्ञान-स्वरूप है, अनंत-रूप है, श्रुति ने ब्रह्म के स्वरूप का यह लक्षण कहा है, जो वस्तु स्वरूप-भूत हो, और इतर पदार्थों से भेद करके लक्षक भी हो, उसीका नाम स्वरूपलक्षण है, सो सत्यादि ब्रह्म के स्वरूप हैं, और इतर जड़ पदार्थों से भेदक भी हैं, इसीवास्ते यह ब्रह्म का स्वरूपलक्षण है ॥ और ब्रह्म के लक्षण में 'सत्य' पद देने से मिथ्या की व्यावृत्ति होती है, अर्थात् मिथ्या पदार्थों से वह भिन्न है, और 'ज्ञान' पद से जड़ की व्यावृत्ति होती है, अर्थात् वह ब्रह्म जड़ पदार्थों से भिन्न चेतन है, 'अनंत' पद से परिच्छिन्न पदार्थों से व्यावृत्ति होती है, अर्थात् देश, काल, वस्तु परि-च्छेदवाले जितने पदार्थ हैं, उन सबसे वह भिन्न है, अर्थात् वह सत्य-स्वरूप है, ज्ञान-स्वरूप है, और अनंत-स्वरूप है, ऐसे ब्रह्म को, 'यो वेद निहतं गुहायाम्' जो विद्वान् पुरुष बुद्धि-रूपी गुहा में स्थित देखता है, और जानता है, अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' करके साक्षात्कार कर लेता है, सो विद्वान् ब्रह्म के साथ अभेद को प्राप्त होकर, संपूर्ण भोगों को एक ही काल में भोगता है, अर्थात् ब्रह्मानंद को प्राप्त होता है ।

तस्माद्वेति । ब्राह्मण-वाक्य करके और ब्रह्म मंत्र-वाक्य करके, जो ब्रह्म कथन किया गया है, उसी ब्रह्म से शब्द, तन्मात्रा, आकाश

प्रथम उत्पन्न हुआ, फिर उसी आकाश से स्पर्शतन्मात्रा वायु उत्पन्न हुई, उसी वायु से रूपतन्मात्रा अग्नि उत्पन्न हुई, उस अग्नि से फिर रसतंन्मात्रा जल उत्पन्न हुआ, उस जल से गंधतन्मात्रा पृथिवी उत्पन्न हुई, उस पृथिवी से व्रीहियवादि औषधियाँ उत्पन्न हुईं, उन औषधियों से भातरूपी अन्न उत्पन्न हुआ, फिर अन्न से वीर्य उत्पन्न हुआ, उस वीर्य से हाथ-पाँववाला स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ, इसलिये यह स्थूल देह अन्न के रस का ही विकार है, उस अन्न रसमय पुरुष का यह प्रसिद्ध शिर है, यह प्रसिद्ध दक्षिण भुजा है, यह प्रसिद्ध सव्य उत्तर भुजा है, और दोनों भुजाओं के बीच में जो मध्यम भाग है, सो संपूर्ण अंगों का आत्मा है, याने अपना आप है, और जो यह प्रसिद्ध नाभी का अधोभाग है सो पुच्छ है, याने पुच्छ की तरह अन्नमय शरीर का आधार है, सो उस बाह्य अन्नमय कोश की उपासना बिषे यह अगला मन्त्र प्रमाण है ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

मूलम् ।

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते, याः काश्च पृथिवीं श्रिताः, अथो अन्नेनैव जीवन्ति, अथैनदपि यन्त्यन्ततः, अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्, तस्मात्सर्वौषधमुच्यते, सर्वं वैतेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम् तस्मात्सर्वौषधमुच्यते अन्नाद्भूतानि जायन्ते जातान्यन्नेन वर्द्धन्ते अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते इति तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयात् अन्योऽन्तरात्मा प्राणमयः तेनैष पूर्णः स वा एष पुरुषविध एव तस्य पुरुषविधताम् अन्वयं पुरुषविधः तस्य प्राण एव

शिरः व्यानो दक्षिणः पक्षः अपान उत्तरः पक्षः आकाश आत्मा पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा तदप्येष श्लोको भवति ॥२॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अन्नात्, वै, प्रजाः, प्रजायन्ते, याः, काः, च, पृथिवीम्, श्रिताः, अथो, अन्नेन, एव, जीवन्ति, अथ, एनत्, अपि, यन्ति, अन्ततः, अन्नम्, हि, भूतानाम्, ज्येष्ठम्, तस्मात्, सर्वौषधम्, उच्यते, सर्वम्, वा, एते, अन्नम्, आप्नुवन्ति, ये, अन्नम्, ब्रह्म, उपासते, अन्नम्, हि, भूतानाम्, ज्येष्ठम्, तस्मात्, सर्वौषधम्, उच्यते अन्नात्, भूतानि, जायन्ते, जातानि, अन्नेन, वर्द्धन्ते, अद्यते, अत्ति, च, भूतानि, तस्मात्, अन्नम्, तत्, उच्यते, इति, तस्मात्, वै, एतस्मात्, अन्नरसमयात्, अन्यः, अन्तरात्मा, प्राणमयः, तेन, एषः, पूर्णः, सः, वै, एषः, पुरुषविधः, एव, तस्य, पुरुषविधताम्, अनु, अयम्, पुरुषविधः, तस्य, प्राणः, एव, शिरः, व्यानः, दक्षिणः, पक्षः, अपानः, उत्तरः, पक्षः, आकाशः, आत्मा, पृथिवी, पुच्छम्, प्रतिष्ठा, तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

च=और
याः=जो
काः=कोई
प्रजाः=प्रजा
पृथिवीम्=पृथिवी के
श्रिताः=आश्रित हैं
+ ताः=वे सब
अन्नात्=रस-परिणामी अन्न से
वै=ही
प्रजायन्ते=उत्पन्न होती हैं

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

च=और
अथो=उत्पत्ति के पश्चात्
अन्नेन=अन्न से
एव=ही
जीवन्ति=जीती हैं और बढ़ती हैं
अथ=जीवन-वर्धन के पश्चात्
अन्ततः=अंत-समय अर्थात् जीवन-त्याग के समय
एनत्=इस अन्न ही
अपि=में

यन्ति=लीन होती हैं
तस्मात्=इसी कारण
अन्नम्=अन्न
हि=निश्चय करके
भूतानाम्=प्राणियों का
ज्येष्ठम्=प्रथम तत्त्व है
च=और
सर्वौषधम्=सब के लिये क्षुधा-निवारणार्थ औषध
उच्यते=कहा जाता है

ये=जे
अन्नम्=अन्न को
ब्रह्म=ब्रह्म
+ इति=करके
उपासते=उपासना करते हैं
ते=वे
सर्वम्=सब
अन्नम्=अन्न को
वा=निश्चय करके
आप्नुवन्ति=प्राप्त होते हैं

यस्मात्=जिस कारण
अन्नम्=अन्न
हि=ही
भूतानाम्=प्राणियों का
ज्येष्ठम्=प्रथम तत्त्व है
तस्मात्=उसी कारण
सर्वौषधम्=सब देह-धारियों के देह-दाह का अर्थात् क्षुधा शान्त करनेवाला
उच्यते=कहा जाजा है

भूतानि=सम्पूर्ण भूत
अन्नात्=अन्न से
जायन्ते=उत्पन्न होते हैं
+ च=और
जातानि=उत्पन्न हुए
अन्नेन=अन्न द्वारा
वर्द्धन्ते=वृद्धि को प्राप्त होते हैं

+ यतः=जिस कारण
तत्=वह अन्न
भूतैः=भूतों द्वारा
अद्यते=खाया जाता है
+ परम्=और वह
भूतानि=भूतों को
च=भी
अत्ति=खाता है
तस्मात्=उसी कारण
अन्नम्=अन्न
उच्यते=कहा जाता है
इति=यह अन्नमय कोश की उपासना का मन्त्र है

वै=स्मरण रहे कि
तस्मात्=उस
एतस्मात्=पूर्वोक्त
अन्नरसमयात्=अन्न-रस द्वारा बने हुए देह से अर्थात् अन्नमय कोश से
अन्यः=पृथक्
अन्तरात्मा=अभ्यन्तरी शरीर
प्राणमयः=प्राणमय कोश
+ अस्ति=है

तेन=उस प्राणमय कोश द्वारा
एषः=यह अन्नमय कोश
पूर्णः=पूरित है याने भराहुआ है जैसे हवा से धौंकनी भरी होती है

वै=पुनः स्मरण रहे कि
सः=वह
एषः=यह प्राणमय कोश
+ अपि=भी
पुरुषविधः=पुरुषाकार
एव=ही
+ अस्ति=है

तस्य=उस पूर्वोक्त अन्नमय कोश
पुरुषविधताम्=पुरुषाकार के
अनु=समान
अयम्=यह प्राणमय कोश
अपि=भी
पुरुषविधः=पुरुषाकार है

तस्य=उस प्राणमय शरीर का
प्राणः=प्राण
एव=ही
शिरः=शिर है

व्यानः=व्यानवायु
दक्षिणः=दहिना
पक्षः=भुजा है

अपानः=अपानवायु
उत्तरः=वाम
पक्षः=भुजा है

आकाशः=अभ्यंतर आकाश अर्थात् समान वायु
आत्मा=शरीर है याने धड़ है

पृथिवी=अपानवायु के रहने का स्थान
+ तस्य=उसका
पुच्छम्=पूँछ है याने नीचे का धड़ है
+ तत्=वह पुच्छस्थानरूप पृथिवी
प्रतिष्ठा=उस प्राणमय शरीर का आधार स्थान है

तत्=तत्र=उस प्राणमय कोश की उपासना विषे
अपि=ही
एषः=यह
श्लोकः=मंत्र प्रमाण
भवति=है (जिसका व्याख्यान आगे किया जावेगा)॥

भावार्थ ।

अन्नाद्वा इति । समष्टि बीजभावापन्न विराडात्मा से प्रसिद्ध स्थावर-जंगम-रूप प्रजा उत्पन्न होती हैं, और जितनी पृथिवी पर प्रजा हैं, वे

सब अन्न से ही उत्पन्न होती हैं, और अन्न को ही भक्षण करके जीती हैं, इसलिये सब प्रजा अन्न के तरफ़ दौड़ती हैं, और फिर पृथिवी-रूपी अन्न में ही सब लय को प्राप्त होजाती हैं, समष्टिरूप अन्न संपूर्ण प्रजा की उत्पत्ति का कारण होने से प्रथम उत्पन्न हुआ है, और सबसे प्रथम होने के कारण क्षुधा सब रोगों का नाशक है, इसी वास्ते वह औषध करके कहा जाता है, जो उपासक अन्न को ही ब्रह्म-रूप करके उपासना करते हैं, अर्थात् अन्न में ही ब्रह्म-बुद्धि को करते हैं, वे निश्चय करके अन्न को प्राप्त होते हैं, और अन्न से ही संपूर्ण प्राणि उत्पन्न होते हैं, और अन्न करके ही उत्पन्न होकर जीते हैं और बढ़ते हैं, इसीवास्ते अन्न को ही जीवन का कारण कहते हैं, यह अन्नमय कोश के उपासना का मंत्र है । जो अन्नमय कोश ब्रह्म की उपासना करते हैं वे अन्न से सदा पूर्ण रहते हैं । पूर्ववाले मंत्र करके अन्नमय कोश का निरूपण करके अब प्राणमय कोश को दिखलाते हैं ।

तस्मादिति । ब्राह्मणभाग करके और मंत्रभाग करके कथन किया जो अन्नमय कोश है, उसके अन्तर और उससे भिन्न प्राणमय कोश है, जैसे धौंकनी बिषे वायु व्याप्त है, उसी प्रकार प्राणमय कोश करके यह स्थूल देह व्याप्त है, सो जो स्थूल देह में वर्तमान प्राणमय कोश है, सो शिर आदि अवयवों करके पुरुषाकार है, उस अन्नमय कोश पुरुषाकार के अनन्तर यह प्राणमय कोश भी है पुरुषाकार है, अन्नमय कोश की तरह यह प्राणमय कोश स्वतंत्र पुरुषाकार नहीं है, बल्कि अन्नमय कोश के पुरुषाकारता को आश्रय करके उसी के आकार ऐसा इसका आकार है, इसी प्रकार पूर्व-पूर्व कोश की पुरुषाकारता के अनंतर उत्तर-उत्तर कोश की पुरुषाकारता आती जाती है, और उस प्राणमय कोश का मुख और नासिका में संचार करनेवाली जो कि प्राणवायु है वही शिर है, और सम्पूर्ण नाड़ियों में संचरण करनेवाली जो व्यानवायु

है, वही दहिना पक्ष है, और नीचे को संचार करनेवाली जो अपान वायु है वह उत्तर पक्ष है, और सम्पूर्ण शरीर में विचरनेवाली जो समान वायु है वह शरीर है, याने धड़ है, और उदान वायु पूँछ याने शरीर का आधार स्थान है, प्राणमय कोश की उपासना विषे यह आगेवाला मंत्र प्रमाण है ॥ २ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

मूलम् ।

प्राणं देवा अनुप्राणन्ति, मनुष्याः पशवश्च ये प्राणो हि भूतानामायुः तस्मात्सर्वायुषमुच्यते सर्वमेवत आयुर्यन्ति ये प्राणं ब्रह्मोपासते प्राणो हि भूतानामायुस्तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात् अन्योऽन्तरात्मा मनोमयः तेनैष पूर्णः स वा एष पुरुषविध एव तस्य पुरुषविधताम् अन्वयं पुरुषविधः तस्य यजुरेव शिरः, ऋग्दक्षिणः पक्षः, सामोत्तरः पक्षः, आदेश आत्मा. अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा तदप्येषश्लोको भवति ॥३॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणम्, देवाः, अनु, प्राणन्ति, मनुष्याः, पशवः, च, ये, प्राणः, हि, भूतानाम्, आयुः, तस्मात्, सर्वायुषम्, उच्यते, सर्वम्, एव, ते, आयुः, यन्ति, ये, प्राणम्, ब्रह्म, उपासते, प्राणः, हि, भूतानाम्, आयुः, तस्मात्, सर्वायुषम्, उच्यते, इति, तस्य, एषः, एव, शरीरः, आत्मा, यः, पूर्वस्य, तस्मात्, वै, एतस्मात्, प्राणमयात्, अन्यः, अन्तरः, आत्मा, मनोमयः, तेन, एषः, पूर्णः, सः, वै, एषः, पुरुषविधः, एव, तस्य, पुरुषविधताम्, अनु, अयम्, पुरुषविधः, तस्य, यजुः, एव, शिरः,

ऋक्, दक्षिणः, पक्षः, साम, उत्तरः, पक्षः, आदेशः, आत्मा, अथर्वाङ्गिरसः, पुच्छम्, प्रतिष्ठा, तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

ये=जो
देवाः=इन्द्रियाभिमानी देवता हैं
च=और
+ ये=जो
मनुष्याः=मनुष्य
पशवः=पशु आदि प्राणी हैं
+ ते=वे सब
प्राणम्=प्राण के
अनु=पश्चात्
प्राणन्ति=चेष्टावान् होते हैं
हि=क्योंकि
प्राणः=प्राण
भूतानाम्=सब भूतों का
आयुः=जीवन है
तस्मात्=इसी कारण से (वह)
सर्वायुषम्=सबका जीवन
उच्यते=कहा जाता है
ये=जो कोई
प्राणम्=प्राण को
ब्रह्म=ब्रह्म
इति=करके
उपासते=उपासना करते हैं
ते=वे
सर्वम्=पूर्ण याने सौ वर्ष तक
आयुः=आयु को
एव=अवश्य

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

यन्ति=प्राप्त होते हैं अर्थात् अल्प मृत्यु और अपमृत्यु से रहित होते हैं
हि=जिस कारण
प्राणः=प्राण
भूतानाम्=सब प्राणियों का
आयुः=आयु है
तस्मात्=उस कारण
सर्वायुषम्=सबका जीवन
उच्यते=कहा जाता है
+ च=और
पूर्वस्य=अन्नमय कोश का
यः=जो
आत्मा=चिदात्मा
शारीरः=शरीर बिषे स्थित
+ अस्ति=है
एषः=वह
एव=ही
तस्य=इस प्राणमय कोश का
अपि=भी
आत्मा=चिदात्मा
+ अस्ति=है
इति=यह प्राणमय कोश की उपासना का मंत्र है
वै=पुनः स्मरण रहे कि
तस्मात्=उस
एतस्मात्=इस

प्राणमयात्=प्राणमय कोश के
अन्तरः=अभ्यन्तर
+ च=और
अन्यः=पृथक्
आत्मा=शरीर
मनोमयः=मनोमय कोश कर-
के प्रसिद्ध
+ अस्ति=है

तेन=इस मनोमय कोश
करके
एषः=यह प्राणमय कोश
पूर्णः=पूरित है अर्थात्
व्याप्त है

वै=स्मरण रहे कि
सः=सो
एषः=यह मनोमय कोश
अपि=भी
पुरुषविधः=पुरुषाकार
एव=ही
अस्ति=है

तस्य=उस प्राणमय कोश
के
पुरुषविधताम्=पुरुषप्रकार के
अनु=समान
अयम्=यह मनोमय कोश
+ अपि=भी
पुरुषविधः=पुरुषाकार है
तस्य=इस मनोमय शरीरका
यजुः=यजुर्वेद
एव=निश्चय करके
शिरः=शिर है
ऋक्=ऋग्वेद
दक्षिणः=दक्षिण
पक्षः=भुजा है
साम=सामवेद
उत्तरः=वाम
पक्षः=भुजा है
आदेशः=ब्राह्मण-ग्रन्थ अर्थात्
ब्राह्मण-भाग
आत्मा=मध्य शरीर है
अथर्वाङ्गिरसः=अथर्वणवेद
पुच्छम्=पूँछ है
+ तत्=सोई

प्रतिष्ठा=उस मनोमय कोश
का अधिष्ठान
+ अस्ति=है
तत्=तत्र=इस मनोमय कोश
की उपासना बिषे
अपि=भी
एषः=यह
श्लोकः=मंत्र प्रमाण
भवति=है ॥

भावार्थ ।

प्राणमिति । पाँच वृत्ति-रूप जो मुख्य प्राण है, उसको आश्रयण करके ही देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब चेष्टा को करते हैं, और प्राणों की क्रिया करके ही सम्पूर्ण क्रियावाले होते हैं, इसी कारण

प्राण प्राणियों का जीवन है, जबतक इस शरीर में प्राण निवास करता है तबतक सबही जीते हैं, जो अधिकारी प्राणमय कोश आत्मा की ब्रह्म-रूप करके उपासना करता है, वह उपासक पूर्ण शतवर्ष की आयु पर्यंत जीता है, जो पुरुष जिस इच्छा करके ब्रह्म की उपासना को करता है, वह पुरुष उसी इच्छा को प्राप्त होता है, जो पुरुष दीर्घ आयु की इच्छा करके ब्रह्म की उपासना को करता है, वह दीर्घ आयु को प्राप्त होता है, और जो चैतन्य आत्मा अन्नमय कोशवाले शरीर में है, वही प्राणमय कोश विषे भी स्थित है। और ब्राह्मण-भाग करके और मन्त्र-भाग करके कथन किया हुआ जो प्राणमय कोश है, उससे भिन्न और उसके भीतर मनोमय कोश है, उस मनोमय कोश करके यह प्राणमय कोश पूर्ण है, और इसीलिये जो चेतन प्राणमय कोश का आत्मा है वही मनोमय कोश का भी आत्मा है, और वह मनोमय कोश भी पुरुषाकार है, अर्थात् वह भी शिर आदि अवयवोंवाला है, इसीवास्ते वह भी पुरुषाकारवाला कहा जाता है, उस पुरुषाकार को दिखलाते हैं, इस मनोमय कोश का यजुर्वेद शिर है, ऋग्वेद दक्षिण पक्ष है, सामवेद उत्तर पक्ष है, और ब्राह्मण-भाग जो है वह उस मनोमय कोश का मध्य भाग है, और अथर्ववेद मनोमय कोश की पूँछ है, अर्थात् अधिष्ठान है, ऐसा जानकर चिंतन करे, इसी अर्थ को मन्त्र भी कहता है ॥ ३ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यतो वाचो निवर्त्तन्ते आप्राप्य मनसा सह आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचनेति तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात् अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः तेनैष पूर्णः स वा एष पुरुषविध एव तस्य पुरुषविधताम् अन्वयं पुरुषविधः तस्य श्रद्धैव

शिरः ऋतं दक्षिणः पक्षः सत्यमुत्तरः पक्षः योग आत्मा महः पुच्छं प्रतिष्ठा तदप्येष श्लोको भवति ॥ ४ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यतः, वाचः, निवर्त्तन्ते, अप्राप्य, मनसा, सह, आनन्दम्, ब्रह्मणः, विद्वान्, न, बिभेति, कदाचन, इति, तस्य, एषः, एव, शारीरः, आत्मा, यः, पूर्वस्य, तस्मात्, वै, एतस्मात्, मनोमयात्, अन्यः, अन्तरः, आत्मा, विज्ञानमयः, तेन, एषः, पूर्णः, सः, वै, एषः, पुरुषविधः, एव, तस्य, पुरुषविधताम्, अनु, अयम्, पुरुषविधः, तस्य, श्रद्धा, एव, शिरः, ऋतम्, दक्षिणः, पक्षः, सत्यम्, उत्तरः, पक्षः, योगः, आत्मा, महः, पुच्छम्, प्रतिष्ठा, तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति ॥

अन्वयः । **पदार्थ-सहित सूक्ष्मभावार्थ ।**

वाचः=वाणी-रूप वेद
मनसा सह=मन द्वारा
यतः=जिस ब्रह्म को
अप्राप्य=न प्राप्त होकर के अर्थात् घटादिवत् न साक्षात्कार करके
निवर्त्तन्ते=लौट आते हैं अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं कर सकते हैं
तस्य=उस
ब्रह्मणः=ब्रह्म के
आनन्दम्=आनंद को
+यः=जो मनोमय कोश का उपासक
विद्वान्=वेद जानता है
सः=वह उपासक
कदाचन=जन्म मरण आदि से कभी
न=नहीं
बिभेति=डरता है याने आवागमन से रहित होकर स्वयं ब्रह्म होजाता है

तस्य=उस
पूर्वस्य=पूर्वोक्त प्राणमय कोश का
यः=जो
शारीरः=शरीर बिषे स्थित
आत्मा=चिदात्मा है
एषः=वह
एव=ही
+अस्य=इसमनोमय कोशका
+ अपि=भी
+ आत्मा=आत्मा है

इति= यह मनोमय कोश के उपासना का मंत्र है

वै=स्मरण रहे कि

तस्मात्=उस

एतस्मात्=इस

मनोमयात्=मनोमय कोश के

अन्तरः=अभ्यन्तर

च=और

अन्यः=पृथक्

आत्मा=शरीर

विज्ञानमयः=विज्ञानमय कोश

+ अस्ति=है

तेन=इस विज्ञानमय कोश से

एषः=वह पूर्वोक्त मनोमय कोश

पूर्णः=व्याप्त है

वै=पुनः स्मरण रहे कि

सः=वह

एषः=यह विज्ञानमय कोश

पुरुषविधः=पुरुषाकार

एव=ही

अस्ति=है

तस्य=उस मनोमय कोशके

पुरुषविधताम्=पुरुषप्रकार के

अनु=समान

अयम्=यह विज्ञानमय कोश

पुरुषविधः=पुरुषाकार है

तस्य=उस विज्ञानमय शरीर का

श्रद्धा=यागादि उपासना विषे श्रद्धा

एव=निश्चय करके

शिरः=शिर है

ऋतम्=मानसिक निश्चय सत्य

दक्षिणः=दहिना

पक्षः=भुजा है

सत्यम्=कायिक वाचिक सत्य

उत्तरः=वाम

पक्षः=भुजा है

योगः=मन का समाधान

आत्मा=मध्य शरीर है

महः=महत्तत्त्व

पुच्छम्=पूँछ है

तत्=वह पूँछ अर्थात् महत्तत्त्व

प्रतिष्ठा=विज्ञानमय शरीर का आधार है

तत्=तत्र=उस विज्ञानमय शरीर की उपासना विषे

अपि=भी

एषः=यह

श्लोकः=मंत्र प्रमाण

भवति=है ॥

भावार्थ ।

यत इति । जिस ब्रह्म आत्मा को सम्पूर्ण वेद वाणी इयत्ता करके

नहीं कहसकती है उसको मन में आरोप्य करने से मनोमय कोश हुआ है, उस मनोमय कोश की उपासना के फल को कहते हैं। मनोमय कोश का जो उपासक ब्रह्म के आनंद को प्राप्त होता है वह जन्म मरण आदि दुःखों से छूट जाता है, क्योंकि दुःख का हेतु जो अविद्या है वह मनोमय कोश की उपासना करके ब्रह्म के साक्षात्कार होने पर नाश होजाती है, और पूर्वोक्त प्राणमय कोश का जो आत्मा है वही मनोमय कोश का भी आत्मा है, आनंद की प्राप्ति के लिये प्राणमय कोश से आत्मत्व दृष्टि को उठा करके मनोमय कोश में आत्मत्व दृष्टि को करे, उस ब्राह्मण प्रतिपाद्य वेदभाग करके और मन्त्र-प्रतिपाद्य वेदभाग करके जो मनोमय कोश है उसके अवान्तर और उससे पृथक् और उसके ही समान विज्ञानमय कोश है, विज्ञान नाम निश्चयात्मक अन्तःकरण की वृत्ति का है, उस विज्ञानमय कोश करके यह मनोमय कोश व्याप्त है, वह विज्ञानमय भी पुरुषाकार है, उस विज्ञानमय पुरुषाकार के पाँच अवयवों को कहते हैं, विज्ञानमय कोश की आस्तिक बुद्धि-रूपी जो श्रद्धा है वही शिर है, और शास्त्र के अनुसार जो कर्त्तव्य है वही उसका दक्षिणपक्ष है, और सत्यभाषण उसका उत्तर पक्ष है, और चित्त की वृत्ति का निरोध-रूप जो योग है सो उसका मध्य भाग है, और हिरण्यगर्भ की समष्टि-रूप बुद्धि अर्थात् महत्तत्त्व उसका आधार है, इसी अर्थ को मन्त्र भी प्रकाश करता है ॥ ४ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

मूलम् ।

विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च विज्ञानं देवाः सर्वे ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति शरीरे पाप्मनो हित्वा सर्वान् कामान् समश्नुत इति तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य तस्माद्वा

एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्दमयः तेनैष पूर्णः स वा एष पुरुषविध एव तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः तस्य प्रियमेव शिरः मोदो दक्षिणः पक्षः प्रमोद उत्तरः पक्षः आनन्द आत्मा ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा तदप्येष श्लोको भवति ॥ ५ ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

विज्ञानम्, यज्ञम्, तनुते, कर्माणि, तनुते, अपि, च, विज्ञानम्, देवाः, सर्वे, ब्रह्म, ज्येष्ठम्, उपासते, विज्ञानम्, ब्रह्म, चेत्, वेद, तस्मात्, चेत्, न, प्रमाद्यति, शरीरे, पाप्मनः, हित्वा, सर्वान्, कामान्, समश्नुते, इति, तस्य, एषः, एव, शारीरः, आत्मा, यः, पूर्वस्य, तस्मात्, वै, एतस्मात्, विज्ञानमयात्, अन्यः, अन्तरः, आत्मा, आनन्दमयः, तेन, एषः, पूर्णः, सः, वै, एषः, पुरुषविधः, एव, तस्य, पुरुषविधताम्, अनु, अयम्, पुरुषविधः, तस्य, प्रियम्, एव, शिरः, मोदः, दक्षिणः, पक्षः, प्रमोदः, उत्तरः, पक्षः, आनन्दः, आत्मा, ब्रह्म, पुच्छम्, प्रतिष्ठा, तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

विज्ञानम्=निश्चय-पूर्वक ज्ञान
यज्ञम्=यज्ञ को
अपि=अवश्य
तनुते=विस्तार करता है
च=और
कर्माणि=संपूर्ण कर्मों को
तनुते=विस्तार करता है

यतः=जिस कारण

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

सर्वे=सब
देवाः=इन्द्रियादि देवता
ज्येष्ठम्=प्रथम उत्पन्न हुए
विज्ञानम्=विज्ञान-रूप
ब्रह्म=ब्रह्म को
उपासते=उपासना करते हैं
ततः=उसीकारण
चेत्=जब
विज्ञानम्=विज्ञान को

ब्रह्म=ब्रह्म
+ इति=करके
+ यः=जो
वेद=जानता है
चेत्=और
तस्मात्=उस विज्ञानमय ब्रह्म से
न=नहीं
प्रमाद्यति=चूकता है अर्थात् दृढ़ निश्चय करके उसकी उपासना करता है
+ सः=वह उपासक
शरीरे=शरीर के
पाप्मनः=पापों को
हित्वा=नाश करके
सर्वान्=सम्पूर्ण
कामान्=कामनाओं को
समश्नुते=सम्यक् प्रकार भोग-करता है
तस्य=उस
पूर्वस्य=पूर्वोक्त मनोमय कोश का
यः=जो
आत्मा=चिदात्मा
शारीरः=शरीर में स्थित है
एषः=वह
एव=ही
+ अस्य=इस विज्ञानमय कोश का
+ अपि=भी
+अस्ति=आत्मा है

वै=पुनः स्मरण रहे कि
तस्मात्=उस
एतस्मात्=इस
विज्ञानमयात्=विज्ञानमय कोश के
अन्तरः=अभ्यन्तर
च=दूसरा
अन्यः=पृथक्
आत्मा=शरीर
आनन्दमयः=आनन्दमय कोश करके प्रसिद्ध
+ अस्ति=है
तेन=इस आनन्दमय कोश करके
एषः=वह विज्ञानमय कोश
पूर्णः=पूरित है अर्थात् व्याप्त है

वै=स्मरण रहे कि
सः=वही
एषः=यह आनंदमय कोश
पुरुषविधः=पुरुषाकार
एव=ही
+ अस्ति=है
तस्य=इस पूर्वोक्त विज्ञानमय कोश के
पुरुषविधताम्=पुरुषाकार के
अनु=समान
अयम्=यह आनंदमय कोश
+ अपि=भी
पुरुषविधः=पुरुषाकार है

तस्य=इस आनंदमय पुरुष का

प्रियम्=पुत्र धन आदि इष्ट वस्तु के दर्शन से उत्पन्न हुआ प्रेम
एव=ही
शिरः=शिर है
मोदः=प्रिय पदार्थ के लाभ से उत्पन्न हुआ हर्ष
दक्षिणः=दहिना
पक्षः=भुजा है
प्रमोदः=पूर्वोक्त अत्यंत हर्ष
उत्तरः=वाम
पक्षः=भुजा है
आनन्दः=जो सब प्रकार से आनंद है
सः=वही
आत्मा=मध्य शरीर है

ब्रह्म=ब्रह्म
पुच्छम्=पूँछ है
तत्=वह ब्रह्म-रूप पूँछ
प्रतिष्ठा=आनन्दमय शरीर का आधार स्थान है

तत्=तत्र=इस आनंदमय कोश की उपासना विषे
अपि=भी
एषः=यह
श्लोकः=मन्त्र प्रमाण
भवति=है ॥

भावार्थ ।

विज्ञानमिति । विज्ञान अर्थात् निश्चयात्मक जो बुद्धि है, सो वैदिक कर्म या ज्ञान को श्रद्धा-पूर्वक विस्तार करती है, और स्मार्त कर्मों को भी विस्तार करती है, और सम्पूर्ण जितने इन्द्रिय-रूपी देवता हैं, वे सब विज्ञानमय आत्मा को ब्रह्म-रूप करके उपासना करते हैं ॥ और इसी कारण जो पुरुष विज्ञानमय आत्मा को ब्रह्म-रूप करके जानता है, और विज्ञानमय से अतिरिक्त जितने अन्नमयादि कोश हैं, उनमें जो ब्रह्म-बुद्धि को नहीं करता है वह जीवित दशा में ही पापों को नाश करके सम्पूर्ण दिव्य भोगों को भोगता है ॥ और जो पूर्वोक्त मनोमय कोश का आत्मा है वही इस विज्ञानमय कोश का भी आत्मा है, मनोमय कोश से उपासक आत्मत्व-दृष्टि को उठाकर विज्ञानमय कोश में आत्म-दृष्टि को करे ।

अब आनन्दमय कोश को कहते हैं—ब्राह्मणभाग करके और मन्त्रभाग

करके प्रतिपाद्य जो विज्ञानमय कोश है उसके भीतर और उससे भिन्न आनन्दमय कोश है, जिस काल में पुरुष शुभकर्मों के फल को अनुभव करता है उसी काल में अन्तःकरण की वृत्ति अन्तर्मुख होजाती है, और तब उसमें आत्मा का प्रतिबिंब पड़ता है, और प्रतिबिंब करके युक्त हुई वह वृत्ति आनन्दमय कही जाती है, और उसमें अधिक आनंद प्राप्त होने से उसका नाम आनन्दमय कोश है। जब कर्म का फल समाप्त होजाता है, तब वह वृत्ति लीन होजाती है, और वही आनन्दमय आत्मा भोक्ता-रूप भी होता है, उसी आनन्दमय कोश करके यह विज्ञानमय कोश व्याप्त है, और यह आनन्दमय कोश भी पुरुषाकार है, उसी आनन्दमय कोश के पाँच अवयवों को दिखलाते हैं।

प्रिय और इष्ट वस्तु के दर्शन से जन्य जो सुख है वह उस आनन्दमय आत्मा का शिर है, और इष्ट पदार्थ के लाभ-जन्य जो सुख है वह उस आनन्दमय कोश का दक्षिण पक्ष है, और इष्ट पदार्थ के भोग से जन्य जो सुख है वह उस आनन्दमय का उत्तर पक्ष है, और प्रिय प्रमोदादि अवयवों में सामान्य-रूप करके अनुगत जो सुख है वह आनन्दमय का मध्य भाग है, और जिस ब्रह्म के बोध के लिये अन्नमयादिक पाँच कोशों का निरूपण किया है, वह ब्रह्म आनन्दमय कोश का पुच्छ-रूप करके आधार है, यही ध्यान करने के योग्य है, और जो कुछ अज्ञान करके कल्पित द्वैत प्रपंच है उस सबकी अवधि ब्रह्म ही है, क्योंकि ब्रह्म में ही सब कल्पित है इसी अर्थ को मन्त्र ने भी कहा है ॥ ५ ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

मूलम् ।

असन्नेव भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत् अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुरिति तस्यैष एव शारीर

आत्मा यः पूर्वस्य अथातोऽनुप्रश्नाः उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चन गच्छति (३) अहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चित्समश्नुता (३) उ सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा इदꣳ सर्वमसृजत यदिदं किञ्च तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च निलयनञ्चानिलयनञ्च विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत् यदिदं किञ्च तत्सत्यमित्याचक्षते तदप्येष श्लोको भवति ॥ ६ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

असन्, एव, भवति, असत्, ब्रह्म, इति, वेद, चेत्, अस्ति, ब्रह्म, इति, चेत्, वेद, सन्तम्, एनम्, ततः, विदुः, इति, तस्य, एषः, एव, शारीरः, आत्मा, यः, पूर्वस्य, अथ, अतः, अनु, प्रश्नाः, उत, अविद्वान्, अमुम्, लोकम्, प्रेत्य, कश्चन, गच्छति, अहो, विद्वान्, अमुम्, लोकं, प्रेत्य, कश्चित्, समश्नुता, उ, सः, अकामयत, बहु, स्याम्, प्रजायेय, इति, सः, तपः, अतप्यत, सः, तपः, तप्त्वा, इदम्, सर्वम्, असृजत, यत्, इदम्, किञ्च, तत्, सृष्ट्वा, तत्, एव, अनुप्राविशत्, तत्, अनुप्रविश्य, सत्, च, त्यत्, च, अभवत्, निरुक्तम्, च, अनिरुक्तं, च, निलयनम्, च, अनिलयनम्, च, विज्ञानम्, च, अविज्ञानम्, च, सत्यम्, च, अनृतम्, च, सत्यम्, अभवत्, यत्, इदम्, किञ्च, तत्, सत्यम्, इति, आचक्षते, तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।	अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
चेत्=यदि		ब्रह्म=ब्रह्म	

असत्=नहीं है
इति=ऐसा
वेद=जानता है जो, तो
+ सः=वह ब्रह्म का नहीं जाननेवाला
एव=आपही
असन्=नास्तिक अर्थात् सत्ता-शून्य होता है
चेत्=यदि
ब्रह्म=ब्रह्म
अस्ति=है
इति=ऐसा
वेद=जानता है जो,
ततः=तो
एनम्=उसको अर्थात् ब्रह्म-सत्ता माननेवाले को
सन्तम्=सत्ता-सहित आस्तिक सज्जन
इति=करके
विदुः=जानते हैं संसारी लोक
तस्य=उस पूर्वोक्त
पूर्वस्य=विज्ञानमय कोश का
यः=जो
आत्मा=चिदात्मा
शारीरः=शरीर विषे स्थित है
एषः=वह
एव=ही
+ आत्मा=आत्मा
+ अस्य=इस आनन्दमय कोश का
+ अपि=भी

+ अस्ति=है
अथ=अब
अनु=इसके पश्चात्
प्रश्नाः=प्रश्न
भवन्ति=उत्पन्न होते हैं कि
अतः=ब्रह्म है अथवा ब्रह्म नहीं है
उत=यदि ब्रह्म है
+ तदा=तो (क्या)
कश्चन=कोई
अविद्वान्=अज्ञपुरुष
अपि=भी
प्रेत्य=देह त्याग करके
अमुम्=उस
लोकम्=ब्रह्मभाव को
गच्छति इ=प्राप्त होता है (यह विचार करना योग्य है)
अहो=यदि पहले कहे हुये के विपरीत ब्रह्म नहीं है
+ तदा=तो (क्या)
कश्चन=कोई
विद्वान्=विद्वान् पुरुष
उ=भी
प्रेत्य=देह-त्याग करके
अमुम्=उस
लोकम्=ब्रह्मभाव को
समश्नुते=नहीं प्राप्त होता है (यह भी विचार करना योग्य है)

इस प्रकार शिष्यों की शंका पर सिद्धान्ती " सत्यं ज्ञानमनन्तं

ब्रह्म" इस पूर्वोक्त महावाक्य को प्रधान रखकर आत्मा की सत्यता के निमित्त आगे ग्रंथ का आरंभ करते हैं

सः= { वह आत्मा जिससे आकाश आदि पञ्च-महाभूत उत्पन्न हुये हैं }
इति=इस प्रकार
अकामयत=कामना करता भया कि
+ अहम्=मैं
अप्रजायेय=अप्रजायेयम् } =नाम रूप प्रकट करके
बहु=बहुत
स्याम्=होऊँ

सः=वह आत्मा
तपः=सृष्टि की उत्पत्ति की इच्छा विषे
अतप्यत=विचार करता भया
सः=वह आत्मा
एवम्=इस प्रकार
तपः=विचार
तप्त्वा=करके
इदम्=इस
सर्वम्=सब नामरूपात्मक जगत् को
असृजत=सृजता भया

यत्=जो
किञ्च=कुछ
इदम्=यह दृश्यमान जगत् है
तत्=उसको
सृष्ट्वा=सृज करके
तत्=उसमें
+ स्वयम्=आप
एव=ही
अनु=पश्चात्
प्राविशत्=चैतन्य कला से प्रवेश करता भया

तत्=उस जगत् विषे
प्रविश्य=प्रवेश करके
अनु=फिर
सत्=मूर्त्त-द्रव्य अर्थात् पृथिवी-जल-तेज-रूप
च=और
त्यत्=अमूर्त्त अर्थात् वायु-आकाश-रूप
च=भी
+ स्वयमेव=आपही
अभवत्=होता भया

निरुक्तम्=निकृष्ट याने नीच जाति
च=और
अनिरुक्तम्=ऊँच जाति
च=भी
+ स्वयमेव=आपही
अभवत्=होता भया

निलयनम्=आश्रय
च=और
अनिलयनम्=अनाश्रय
च=भी
+ स्वयमेव=आपही
+ अभवत्=होता भया

विज्ञानम्=चेतन
च=और
अविज्ञानम्=अचेतन
च=भी
+ स्वयमेव=आपही
+ अभयत्=होता भया
सत्यम्=सत्य
च=और
अनृतम्=असत्य
च=भी
+ स्वयमेव=आपही
+ अभवत्=होता भया
यत्सत्यात्=जिसकी सत्यता से
यत्=जो
किञ्च=कुछ
इदम्=यह कार्य-रूप जगत् है
तत्=सो भी
सत्यम्=सत्य
अभवत्=होता भया
तत्=उस सत्य ज्ञानानंदरूप ब्रह्म को
सत्यम्=परमार्थ से सत्य
इति=करके
आचक्षते=कहते हैं (ब्रह्मवेत्ता लोक)
तत्=तत्र=उस परमार्थ सत्य की उपासना बिषे
अपि=भी
एषः=यह
श्लोकः=मंत्रप्रमाण
भवति=है ॥

भावार्थ ।

असन्नेवेति । सम्पूर्ण व्यवहारों से रहित और सम्पूर्ण इन्द्रियों का अविषय जो ब्रह्म है वह असत् है, अर्थात् वह है नहीं, इस प्रकार जो पुरुष जानता है वह पुरुष पुरुषार्थसे रहित असत् के तुल्य नास्तिक श्रद्धा-हीन होता है, और इसी कारण वह असाधु समझा जाता है, और जो पुरुष सम्पूर्ण द्वैत जगत् का अधिष्ठान और कर्त्ता और लय का आधार ब्रह्म को जानता है, उसको ब्रह्मवेत्ता लोग ब्रह्म-स्वरूप और परमार्थ से सद्रूप करके मानते हैं, इसलिये ब्रह्म है ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि जो विज्ञानमय कोश का आत्मा है, वही आनन्दमयकोश का भी आत्मा है, और उसी विज्ञानमय कोश के अभ्यन्तर आनन्दमय कोश स्थित है, पूर्व श्रवण-विधि करके आत्म-तत्त्व को दिखाया है,

यहाँ पर मनन-विधि करके आत्म-तत्त्व के दिखाने के लिये प्रथम प्रश्नों को लिखते हैं ।

असन्नविद् । अज्ञानी मरकर प्रकाशस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है, वा नहीं होता है, और विद्वान् पूर्वोक्त ब्रह्म को प्राप्त होता है, या अविद्वान् की तरह नहीं प्राप्त होता है, और ब्रह्म सम होने से किसी का भी पक्षपाती नहीं है, तब अविद्वान् उस ब्रह्म को प्राप्त होता है, वा नहीं होता है और विद्वान् उसको प्राप्त होता है, वा नहीं होता है, इन प्रश्नों के उत्तर में आगे ग्रन्थ का आरम्भ करते हैं ।

सोऽकामयतेति । परमात्मा सर्ग के आदिकाल में ऐसा इच्छा करता भया कि 'बहुस्यां प्रजायेयेति' ॥ मैं एक से अनेक होजाऊँ, और प्रजा-रूप करके मैं उत्पन्न होऊँ ।

प्रश्न—पूर्व सिद्ध जो ब्रह्म है उसकी स्वरूप से उत्पत्ति नहीं बनती है ?

उत्तर—जैसे जल में सूर्यादिकों के प्रतिबिंब का प्रवेश होता है, वैसे अन्तःकरणादिकों में ब्रह्म के प्रतिबिंब का प्रादुर्भाव होता है, यही उत्पत्ति अंगीकार की है, स्वरूप से उसकी उत्पत्ति नहीं मानी है । जब इस प्रकार वह ईश्वर जगत् के रचने का विचार करता भया और पश्चात् फिर वह सम्पूर्ण जगत् को रचता भया, तब रचे हुए जगत् की चेष्टा के लिये आपही उसमें प्रवेश करता भया, अर्थात् संपूर्ण जीवों के अन्तःकरण में अपना प्रतिबिंब डालता भया, यही उसका प्रवेश है, क्योंकि जड़ में वास्तव से व्यापक का प्रवेश बनता नहीं है ।

तदनुप्रविश्येति । उस कार्य-रूप जगत् में वह परमात्मा प्रवेश करके आपही स्थूल सूक्ष्म-रूप भी होता भया, पृथिवी, जल और तेज ये तीन स्थूल भूत चक्षुरादि इन्द्रियों का विषय मूर्त्तिमान् हैं, और वायु आकाश यह दो भूत अमूर्त्तिमान् हैं, सो वह परमात्मा ही मूर्त्त और

अमूर्त्त-रूप होता भया, और जो कुछ नाम-रूप करके निरूपण करने को शक्य है, अर्थात् जितना कुछ भूत भौतिक कार्य है. उसका नाम निरुक्त है: और जो कुछ नाम-रूप करके निरूपण करने को अशक्य है उसका नाम अनिरुक्त है, सो निरुक्त अनिरुक्त-रूप भी वह आपही होता भया, जो किसी आधार के आश्रित होकर स्थित होवे उसका नाम 'निलयनं' है जैसे कि मंदिर आदिक हैं, और जो किसी आधार के आश्रित होकर स्थित न होवे उसका नाम 'अनिलयनं' है, जैसे आकाशादिक. और चेतनादिक मनुष्यों का नाम विज्ञान है, और जड़ पाषाणादिकों का नाम अविज्ञान है, और व्यवहार का विषय जो नदियों के जलादिक हैं वह सत्य कहे जाते हैं, और प्रातिभासिक जोकि शुक्ति रजतादिक हैं वह असत्य कहे जाते हैं, ये सब उसी परमात्मा से ही उत्पन्न होते भये, इसलिये जो कुछ वस्तुमात्र है उसको ब्रह्मवेत्ता लोग ब्रह्म-रूप करके ही कथन करते हैं, इसी अर्थको मन्त्र भी कहता है ॥ ६ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

मूलम् ।

असद्वा इदमग्र आसीत्ततो वै सदजायत तदात्मानꣳ स्वयमकुरुत तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति यद्वैतत्सुकृतं रसो वै सः रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्तस्मात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् एष ह्येवानन्दयाति यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्ये-ऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते अथ सोऽभयं गतो भवति यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति तत्त्वमेव भयं विदुषो-ऽमन्वानस्य तदप्येष श्लोको भवति ॥ ७ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

असत्, वै, इदम् अग्रे, आसीत्, ततः, वै, सत्, अजायत, तत्, आत्मानम्, स्वयम्, अकुरुत, तस्मात्, तत्, सुकृतम्, उच्यते, इति, यत्, वा, एतत्, सुकृतम्, रसः, वै, सः, रसम्, हि, एव, अयम्, लब्ध्वा, आनन्दीभवति, कः, हि, एव, अन्यात्, कः, प्राण्यात्, तस्मात्, यत्, एषः, आकाशः, आनन्दः, न, स्यात्, एषः, हि, एव, आनन्दयति, यदा, हि, एव, एषः, एतस्मिन्, अदृश्ये, अनात्म्ये, अनिरुक्ते, अनिलयने, अभयम्, प्रतिष्ठाम्, विन्दते, अथ, सः, अभयम्, गतः, भवति, यदा, हि, एव, एषः, एतस्मिन्, उत, अरम्, अन्तरम्, कुरुते, अथ, तस्य, भयम्, भवति, तत्, त्वम्, एव, भयम्, विदुषः, अमन्वानस्य, तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

अग्रे=उत्पत्ति से पूर्व
इदम्=यह जगत्
असत्=अव्यक्त अर्थात् ब्रह्म-स्वरूप
वै=ही
आसीत्=था

ततः=उस अव्यक्त ब्रह्म से
सत्-नाम-रूपात्मक यह जगत्
वै=निश्चय करके
अजायत=उत्पन्न होता भया
सत्=वह एकाकार ब्रह्म
स्वयम्=आपही याने अपनी कामना से
आत्मानम्=अपने को

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

एव=ही
अकुरुत=जगत् रूप करता भया

तस्मात्=इसलिये
तत्=वह ब्रह्म
सुकृतम्=सुकृत
उच्यते=कहा जाता है, क्योंकि कारण से कार्यको प्राप्त होकर भी विकार को नहीं प्राप्त हुआ है

यत्=चूंकि
वा=निश्चय करके
एतत्=यह ब्रह्म
सुकृतम्=कारणात्मक सत्यरूप है
वै=इसलिये
सः=वह

रसः=सार-रूप है
हि=क्योंकि
अयम्=यह जीवात्मा
रसम्=रस-रूप ब्रह्म को
लब्ध्वा=पा करके
एव=निःसंदेह
आनन्दीभवति=पूर्णानन्द होता है

यत्=यदि=अगर
आकाशे=हृदयाकाश बुद्धि-रूपी गुहा विषे स्थित
एषः=यह
आनन्दः=परमानन्द-स्वरूप परमात्मा
न स्यात्=न हो
+ तदा=तो
+ लोके=लोक विषे
हि=निश्चय करके
कः एव=कौन
अन्यात्=अपानादि क्रिया के करने में समर्थ होवे
+ च=और
कः=कौन
प्राण्यात्=प्राणादि क्रिया के करने में समर्थ होवे अर्थात् विना आत्मशक्ति के अपान और प्राणादि किसी अपने कार्य के करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं
तस्मात्=इसलिये
हि=निश्चय करके
एषः=यह परमात्मा
एव=ही
+ लोकम्=लोक को
आनन्दयति=आनंदित करता है अर्थात् विषय-सुख को प्राप्त करता है

हि=क्योंकि
अदृश्ये=इन्द्रियोंका अगोचर
अनात्म्ये=शरीर-शून्य
अनिरुक्ते=विशेष-शून्य
+ च=और
अनिलयने=आधार-शून्य ऐसा जो ब्रह्म है
एतस्मिन्=उस विषे
यदा एषः=जब यह उपासक
अभयम्=भयरहित अर्थात् द्वैतभय शून्य
प्रतिष्ठाम्=स्थिति को
विन्दते=प्राप्त होता है
अथ=तब
सः=वह उपासक
अभयम्=अभयपद को
गतः=प्राप्त
भवति=होता है

हि=ज्ञात रहे कि
यदा=जब
एषः=यह विद्वान्
एतस्मिन्=उस ब्रह्म विषे
अरम्=कुछ

अपि=भी
अन्तरम्=भेद
कुरुते=रखता है
अथ=तब
तस्य=उसको
भयम्=भय
एव=अवश्य
भवति=होता है

अमन्वानस्य=अद्वैत न माननेवाले
विदुषः=विद्वान् को
एव=भी
तत्=वह ब्रह्म
भयम्=भय का हेतु
त्वम्=तू होता है
तत्=तत्र=ब्रह्म के उस भय के हेतु विषे
अपि=भी
एषः=यह
श्लोकः=मंत्र प्रमाण
भवति=है ॥

भावार्थ ।

असद्वेति । यह जो प्रत्यक्ष का विषय जगत् है, सो उत्पत्ति से पूर्व असत् अर्थात् नाम रूप करके प्रकट नहीं होता भया, क्योंकि कथमसतः सज्जायेत'। असत् से अर्थात् शून्य से कैसे व्यावहारिक सत्रूप जगत् की उत्पत्ति हो सकती है, इस श्रुति-वाक्य ने शून्य से जगत् की उत्पत्ति का निषेध किया है, इसलिये अव्यक्त ब्रह्म से नाम-रूप संयुक्त जगत् उत्पन्न होता भया, अर्थात् अव्यक्त शब्द का वाच्य जो कि ब्रह्म है, सो अपने को ही जगत्रूप करके दिखाता भया, और जिस कारण ब्रह्म आपही जगदाकार होता भया, उसी कारण ब्रह्म को श्रुति जगत् का कर्ता कथन करती है, और इसीलिये ब्रह्म ही रस है, अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का सारभूत है, और जीवभूत सत्त्व प्रधान अन्तःकरण में अभिव्यक्त जो ब्रह्मानन्द है उसको प्राप्त होकर सुखी होते हैं, निरुपाधिक ब्रह्मानन्द करके विद्वान् लोग सुखी होते हैं, और सोपाधिक ब्रह्मानन्द करके इतर मूर्ख लोग सुखी होते हैं । सम्पूर्ण जीवों को आनन्द का कारक होने से आनन्द-रूप ब्रह्मही है, यदि सबका साक्षीभूत हार्दाकाश में अर्थात् बुद्धिरूपी गुहा विषे स्थित आनन्दरूप आत्मा न होवे तो जीवन का हेतु प्राणादिकों के व्यापार को

कौन करे, इसीसे सिद्ध होता है कि प्राणादिकों का व्यापार भी चेतन के आधीन है, और वही चेतन आनन्द-रूप आत्मा सम्पूर्ण लोकों को सुख प्राप्त करता है, और साधक जिस विद्याऽवस्था में इस ब्रह्म में अभयपद को प्राप्त होता है, उसी अवस्था में ब्रह्मानन्द को भी प्राप्त होजाता है, क्योंकि उसकी इच्छा अविद्या-कृत नानात्व दर्शन की अभाव होजाती है।

प्रश्न—कैसे ब्रह्म में वह साधक अभय प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है?

उत्तर—जो दृश्य प्रपञ्च से वर्जित है, शरीर से रहित है, इयत्ता करके जो नहीं कहा जाता है, और जो किसी के आश्रित भी नहीं है वही ब्रह्म है, हे प्रियदर्शन! विद्वान् के लिये एकत्व दर्शन ही अभय का कारण है, और अविद्वान् के लिये नानात्व दर्शन भय का कारण है, विद्वान् के अभय के कारण को कहकर अब अविद्वान् के भय के कारण को कहते हैं। जिस अविद्या दशा में यह अनात्मदर्शी उस ब्रह्म में थोड़ासा भी भेद करता है, याने वह ईश्वर मेरे से पृथक् है, और मैं उससे पृथक् हूँ इस प्रकार की भेद-भावना को करता है, उस भेददर्शी को भय होता है, भेद-बुद्धि करने से केवल अविद्वान् को ही भय नहीं होता है, परंतु विद्वान् को भी भय होता है, और उपास्य-उपासक भाव में भी भय ही होता है, क्योंकि एक में उपास्य-उपासक भाव बनता ही नहीं है, द्वैत में ही उपास्य-उपासक भाव बनता है, इसी अर्थ को आगेवाला मन्त्र भी कहता है ॥ ७ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

मूलम् ।

भीषाऽस्माद्वातः पवते, भीषोदेति सूर्य्यः, भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च, मृत्युर्धावति पञ्चम इति, सैषाऽऽनन्दस्य मीमाᳪंसा भवति, युवा स्यात्साधु युवाऽध्यायिकः, आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ठः, तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य

पूर्णा स्यात्, स एको मानुष आनन्दः, ते ये शतं मानुषा आनन्दाः, स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य, ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः, स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य, ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः, स एकः पितॄणां चिरलोकलोकानामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य, ते ये शतं पितॄणां चिरलोकलोकानामानन्दाः, स एक अजानजानां देवानामानन्दः, श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य, ते ये शतमजानजानजानां देवानामानन्दाः, स एकः कर्म्मदेवानामानन्दः, ये कर्मणा देवानपि यन्ति, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य, ते ये शतं कर्म्मदेवानामानन्दाः, स एको देवानामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य, ते ये शतं देवानामानन्दाः, स एक इन्द्रस्यानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य, ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः, स एको बृहस्पतेरानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य, ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः, स एकः प्रजापतेरानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य, ते ये शतं प्रजातेरानन्दाः, स एको ब्रह्मण आनन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य, स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये, स एकः, स य एवंवित्, अस्माल्लोकात्प्रेत्य एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रमति, एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति, तदप्येष श्लोको भवति ॥ ८ ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

भीषा, अस्मात्, वातः, पवते, भीषा, उदेति, सूर्यः, भीषा, अस्मात्, अग्निः, च, इन्द्रः, च, मृत्युः, धावति, पञ्चमः, इति, सा, एषा, आनन्दस्य, मीमांसा, भवति, युवा, स्यात्, साधुयुवाध्यायिकः, आशिष्ठः, दृढिष्ठः, बलिष्ठः, तस्य, इयम्, पृथिवी, सर्वा, वित्तस्य, पूर्णा, स्यात्, सः, एकः, मानुषः, आनन्दः, ते, ये, शतम्, मानुषाः, आनन्दाः, सः, एकः, मनुष्यगन्धर्वाणाम्, आनन्दः, श्रोत्रियस्य, च, अकामहतस्य, ते, ये, शतम्, मनुष्यगन्धर्वाणाम्, आनन्दाः, सः, एकः, देवगन्धर्वाणाम्, आनन्दः, श्रोत्रियस्य, च, अकामहतस्य, ते, ये, शतम्, देवगन्धर्वाणाम्, आनन्दाः, सः, एकः, पितॄणाम्, चिरलोकलोकानाम्, आनन्दः, श्रोत्रियस्य, च, अकामहतस्य, ते, ये, शतम्, पितॄणाम्, चिरलोकलोकानाम्, आनन्दाः, सः, एकः, अजानजानाम्, देवानाम्, आनन्दः, श्रोत्रियस्य, च, अकामहतस्य, ते, ये, शतम्, अजानजानाम्, देवानाम्, आनन्दाः, सः, एकः, कर्म्मदेवानाम्, आनन्दः, ये, कर्म्मणा, देवान्, अपि, यन्ति, श्रोत्रियस्य, च, अकामहतस्य, ते, ये, शतम्, कर्म्मदेवानाम्, आनन्दाः, सः, एकः, इन्द्रस्य, आनन्दः, श्रोत्रियस्य, च, अकामहतस्य, ते, ये, शतम्, इन्द्रस्य, आनन्दाः, सः, एकः, बृहस्पतेः, आनन्दः, श्रोत्रियस्य, च, अकामहतस्य, ते, ये, शतम्, बृहस्पतेः, आनन्दाः, सः, एकः, प्रजापतेः, आनन्दः, श्रोत्रियस्य, च, अकामहतस्य, ते, ये, शतम्, प्रजापतेः, आनन्दाः, सः, एकः, ब्रह्मणः, आनन्दः, श्रोत्रियस्य, च, अकामहतस्य, सः, यः, च, अयम्, पुरुषे, यः, च, असौ, आदित्ये, सः, एकः, सः, यः, एवंवित्, अस्मात्, लोकात्, प्रेत्य, एतम्, अन्नमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रामति, एतम्, प्राणमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रामति, एतम्, मनोमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रामति, एतम्, विज्ञानमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रामति, एतम्,

आनन्दमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रामति, तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

अस्मात्= अस्य } =उस ब्रह्म के
भीषा=भिया=भय से
वायुः=वायु
पवते=चलता है

अस्मात्=उसके
भीषा=भय से
सूर्य्यः=सूर्य
उदेति=उदय होता है

च=और
अस्मात्=उसके
भीषा=भय से
अग्निः=अग्निदेव
धावति=दहनकर्म बिषे प्रवृत्त होता है

च=और
अस्मात्=उसके
भीषा=भय से
इन्द्रः=इन्द्र
धावति=पालनकर्म बिषे प्रवृत्त होता है

इति=इसी प्रकार
अस्मात्=उसके
भीषा=भय से
पञ्चमः=पाँचवाँ
मृत्युः=मृत्यु

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

धावति=मारणकर्म बिषे प्रवृत्त होता है

सा=वह
एषा=यह
मीमांसा=विचार
आनन्दस्य=आनंद का
\+ अग्रे=आगे
भवति=है

\+ यः=जो
\+ अस्मिन् लोके } =इस मनुष्य लोक बिषे
साधुयुवा=अच्छा जवान
स्यात्=होवे
\+ च=और
युवाध्यायिकः } =यौवन अवस्था बिषे ही विद्या-सम्पन्न होवे
\+ च=और
आशिष्ठः= { आज्ञा करके युक्त हो याने साहब अखत्यार हो
\+ च=और
द्रढिष्ठः=अत्यंत दृढ़ अर्थात् शूर-वीर हो
\+ च=और
बलिष्ठः=अति बलवान् हो
वित्तस्य=वित्त करके
पूर्णा=पूर्ण याने भरपूर हो
\+ च=और

इयम्=यह
सर्वा=संपूर्ण
पृथिवी=पृथिवी
तस्य=उसके आधीन
स्यात्=हो
+तस्य चक्रवर्तेे राज्ञः } =ऐसे चक्रवर्ती राजा का
यः=जो
आनन्दः=आनंद है
सः=सो
मानुषः=मनुष्यसम्बन्धी
एकः=एक अंश
आनन्दः=आनन्द है

च=और ऐसे
ते=वे
ये=जो
शतम्=सौ-गुना
मानुषाः=मनुष्यसंबंधी
आनन्दाः=आनन्द हैं
सः=सो
मनुष्यगन्धर्वाणाम् = { मानुषभाव से कर्मानुसार जो गन्धर्व हुए हैं उनका
एकः=एक अंश
आनन्दः=आनन्द है

च=और
अकामहतस्य=निष्काम
श्रोत्रियस्य=विद्वान् का
च=भी
स आनन्दः=वही आनन्द है

च=और ऐसे
ते=वे
ये=जो
शतम्=सौ-गुना
मनुष्यगन्धर्वाणाम् } =मनुष्य गन्धर्वों के
आनन्दाः=आनन्द हैं
सः=सो
देवगन्धर्वाणाम्=देव-योनि गन्धर्वों का
एकः=एक अंश
आनन्दः=आनन्द है

+ च=और
स एषानन्दः=वही आनन्द
अकामहतस्य=निष्काम
श्रोत्रियस्य=विद्वान् का
च=भी
+ अस्ति=है

च=और ऐसे
ते=वे
ये=जो
शतम्=सौ-गुना
देवगन्धर्वाणाम्=देव-योनि गन्धर्वों के
आनन्दाः=आनन्द हैं
सः=सो
चिरलोकलोकानाम् } =चिरकाल स्थायी हैं लोक जिनके ऐसे
पितृणाम्=पितरों का
एकः=एक अंश
आनन्दः=आनन्द है

अकामहतस्य=निष्काम
श्रोत्रियस्य=विद्वान् का
च=भी
तद्वदानन्दः=उसीके समान आनन्द है
चिरलोक-लोकानाम् = चिरकाल स्थायी हैं लोक जिनके ऐसे
पितृणाम्=पितरों के
ते=वे
ये=जो
शतम्=सौ-गुना
आनन्दाः=आनन्द हैं
सः=सो
अजानजानाम्= स्मार्त कर्म द्वारा जो देव-योनि को प्राप्त हुए हैं ऐसे
देवानाम्=देवताओं का
एकः=एक अंश
अनन्दः=आनन्द है
+ स एव=वही आनन्द
अकामहतस्य=निष्काम
श्रोत्रियस्य=विद्वान् का
च=भी
+ अस्ति=है

अजानजानाम्= स्मार्त कर्म द्वारा जो देव-योनि को प्राप्त हुए हैं ऐसे
देवानाम्=देवताओं के
ते=वे
ये=जो
शतम्=सौ-गुना
आनन्दाः=आनन्द हैं
सः=सो
एकः=एक अंश
आनन्दः=आन्द है
तेषाम्=उन
कर्मदेवानाम्=कर्म देवों का
ये=जो
कर्मणा=अग्निहोत्र आदि श्रौत-कर्म करके
देवान्=देवभाव को
अपि यंति=प्राप्त होते हैं
+ च=और
+ तेषां ये आनन्दाः = उनको जो आनन्द है
+ स एव=वही आनन्द
अकामहतस्य=निष्काम
श्रोत्रियस्य=विद्वान् का
च=भी
अस्ति=है

कर्मदेवानाम्=कर्म देवों के
ते=वे ऐसे
ये=जो
शतम्=सौ-गुना
आनन्दाः=आनन्द हैं
सः=सो
देवानाम्=वसु आदि देवताओं का
एकः=एक अंश
आनन्दः=आनन्द है
+ स एव=वही आनन्द
अकामहतस्य=निष्काम
श्रोत्रियस्य=विद्वान् का

च=भी
+ अस्ति=है

देवानाम्=वसु आदि देवताओं के
ते=वे
ये=जो
शतम्=सौ गुना
आनन्दाः=आनन्द हैं
सः=सो
इन्द्रस्य=इन्द्र का
एकः=एक अंश
आनन्दः=आनन्द है
+ स एव=वही आनन्द
अकामहतस्य=निष्काम
श्रोत्रियस्य=विद्वान् का
च=भी
+ अस्ति=है

इन्द्रस्य=इन्द्र के
ते=वे
ये=जो
शतम्=सौ-गुना
आनन्दः=आनन्द है
सः=सो
बृहस्पतेः=बृहस्पति देव-गुरु का
एकः=एक अंश
आनन्दः=आनन्द है
+ स एव=वही आनन्द
अकामहतस्य=निष्काम
श्रोत्रियस्य=विद्वान् का
च=भी
+ अस्ति=है

बृहस्पतेः=बृहस्पति देव-गुरु के
ते=वे
ये=जो
शतम्=सौ-गुना
आनन्दाः=आनन्द हैं
सः=वही
प्रजापतेः=ब्रह्मा का
एकः=एक अंश
आनन्दः=आनन्द है
+ स एव=वही आनन्द
अकामहतस्य=निष्काम
श्रोत्रियस्य=विद्वान् का
च=भी
+ अस्ति=है

प्रजापतेः=ब्रह्मा के
ते=वे
ये=जो
शतम्=सौ-गुना
आनन्दाः=आनन्द हैं
सः=वही
ब्रह्मणः=ब्रह्म का
एकः=एक अंश
आनन्दः=आनन्द है
+ स एव=वही आनन्द
अकामहतस्य=निष्काम
श्रोत्रियस्य=विद्वान् का
च=भी
अस्ति=है

च=और
यः=जो
सः=वह
अयम्=यह आनन्द
पुरुषे=पुरुष विषे है
च=और
यः=जो
आदित्ये=सूर्य विषे
असौ=यह आनन्द है

सः=सो
एकः=एक अंश
आनन्दः=आनन्द है

यः=जो
एवंवित्=इस प्रकार जानने-वाला है
सः=वह
अस्मात्=इस
लोकात्=लोक से
प्रेत्य=मरकर
एतम्=पूर्वोक्त
अन्नमयम्=अन्नमय
आत्मानम्=शरीर को
उपसंक्रामति=उल्लंघन करता है
एतम्=पूर्वोक्त
प्राणमयम्=प्राणमय
आत्मानम्=शरीर को
उपसंक्रामति=उल्लंघन करता है
एतम्=पूर्वोक्त
मनोमयम्=मनोमय
आत्मानम्=शरीर को
उपसंक्रामति=उल्लंघन करता है
एतम्=पूर्वोक्त
विज्ञानमयम्=विज्ञानमय
आत्मानम्=शरीर को
उपसंक्रामति=उल्लंघन करता है
एतम्=पूर्वोक्त
आनन्दमयम्=आनन्दमय
आत्मानम्=शरीर को
उपसंक्रामति={ उल्लंघन करता है अर्थात् पञ्चकोशातीत स्वयं ब्रह्म हो जाता है
तत्=तत्र=इस विषे
अपि=भी
एषः=यह
श्लोकः=मन्त्र प्रमाण
भवति=है ॥

भावार्थ ।

भीषेति । उसी ब्रह्म के भय करके वायु रात-दिन निरन्तर गमन करता रहता है, उसी ब्रह्म के भय से सूर्य नित्य ही उदय अस्त भाव को प्राप्त होता रहता है, उसी ब्रह्म के भय से अग्नि प्रज्वलित होती रहती है, उसी ब्रह्म के भय से इन्द्र वर्षा आदि कार्यों को करता रहता है, और उसी ब्रह्म के भय से पञ्चम मृत्यु प्रति दिन प्राणियों के

कर्मों के अनुसार उनके नाश करने को दौड़ता ही रहता है, तात्पर्य यह है कि वायु, सूर्य, अग्नि, इन्द्र और यम ये पाँचो जिसके भय से रात-दिन अपने-अपने कार्य करने के लिये दौड़ते फिरते हैं उसीको तुम हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्म जानो, जब कि वायु आदिकों के भय का हेतु ब्रह्म है, तब इतर तुच्छ जीवों का कहना ही क्या है ? वक्ष्यमाण के विचार से और ब्रह्म की प्राप्ति से जो आनन्द है वह सब आनंदों की अवधि है, याने उसके आगे और आनन्द नहीं है और उसके साबित करने के लिये मानुषानन्द से आरम्भ करते हैं । जो पुरुष यौवन अवस्थावाला हो, सुंदर-रूप और सुंदर-स्वभाववाला भी हो, और सब प्रकार की विद्या से सम्पन्न हो, ऐश्वर्यवाला हो, माता-पिता और आचार्य करके सुशिक्षित भी हो, शूर-वीर हो, वित्त करके पूर्ण हो, और संपूर्ण पृथिवी उसके आधीन हो, ऐसे चक्रवर्ती राजा को जितना आनन्द प्राप्त होता है वह मनुष्यसंबंधी एक अंश आनन्द है, और मनुष्यानन्द का सौ-गुना एक गन्धर्वानन्द है, अर्थात् जो कर्म और उपासना द्वारा गन्धर्व-योनि को प्राप्त हुआ है उसको मानुषानन्द से सौ-गुना अधिक आनन्द प्राप्त होता है, और जितना आनन्द उसको है उतना ही शुद्धचित्त निष्काम विद्वान् को मिलता है, और गन्धर्वानन्द से सौ-गुना अधिक आनन्द देव-योनि जन गन्धर्वों को होता है, याने उन गन्धर्वों को जो कल्प के आदि से ही देव-योनि में उत्पन्न हुए हैं, और उतना ही आनन्द शुद्धचित्त निष्काम विद्वान् को होता है, जितना देव गन्धर्वों को अपनी पदवी में आनन्द होता है उससे सौ-गुना अधिक आनन्द अग्निष्वात्तादि पितरों को होता है, याने उनको जो पितर चिरकाल पर्यन्त पितृलोक में सुख को अनुभव करते हैं उतना ही आनन्द शुद्धचित्त निष्काम विद्वान् को भी होता है, और जो आनन्द चिरकालस्थायी पितरों को होता है उससे भी सौ-गुना अधिक

आनन्द अजानज देवतों को अर्थात् उन देवतों को जो स्मार्त कर्मों के अनुष्ठान करके देव-योनि को प्राप्त हुए हैं, और जितना आनन्द उनको है उतना ही आनन्द शुद्धचित्त निष्काम विद्वान् को होता है, और जितना आनन्द देवतों को होता है उससे भी सौ-गुना अधिक आनन्द कर्मदेवतों को होता है, अर्थात् उन देवतों को जो श्रौतकर्मों को करके देवता हुए हैं, और जितना आनन्द उनको है उतना ही आनन्द निष्काम शुद्धचित्त विद्वान् को होता है, और जो आनन्द कर्मजन देवतों को होता है उससे भी सौ-गुना अधिक आनन्द देवतों को होता है, अर्थात् उनको जो देव-योनि में ही प्रथम से उत्पन्न हुए हैं, और उतना ही आनन्द निष्काम विद्वान् को होता है, और जितना आनन्द देवतों को होता है उससे सौ-गुना अधिक आनन्द इन्द्र को जो देवतों का अधिपति है होता है, और उतना ही आनन्द निष्काम शुद्धचित्त विद्वान् को भी होता है, और जितना आनन्द इन्द्र को होता है उससे भी सौ-गुना अधिक आनन्द बृहस्पति को होता है जो सम्पूर्ण देवतों के गुरु हैं, और उतना ही आनन्द निष्काम शुद्धचित्त विद्वान् को होता है, और जितना आनन्द बृहस्पति को होता है उसका सौ-गुना अधिक आनन्द प्रजापति को होता है (प्रजापति नाम विराट् का है जो सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ है) और उतना ही आनन्द निष्काम विद्वान् को होता है, और जितना आनन्द एक प्रजापति को होता है उससे भी सौ-गुना अधिक आनन्द ब्रह्मा को होता है और जितना आनन्द ब्रह्मा को होता है, उतना ही निष्काम विद्वान् को होता है, और ब्रह्मा का आनन्द भी उस ब्रह्मानन्द या आत्मानन्द का एक लेशमात्र है, और उसी आनन्द की एक मात्रा को लेकर सम्पूर्ण जगत् आनन्दित हो रहा है, वह ब्रह्मानन्द एक समुद्र है, उसकी एक बूँद-मात्र से सम्पूर्ण संसार आनन्द को प्राप्त होरहा है,

इसी कारण वह ब्रह्मानन्द निरतिशयानन्द है, निरवधिक आनन्द है ।

प्रश्न—जब ब्रह्मानन्द की एक मात्रा को लेकर सम्पूर्ण जगत् के लोक आनन्दित होते हैं, तब तो सम्पूर्ण विषयानन्द भी ब्रह्मानन्द का एक अंशमात्र ही हुआ, और अंशांशी का भेद नहीं होता है, जैसे हाथ पाँव सब शरीर के अंश हैं, और शरीर अंशी है, वैसे ब्रह्मानन्द भी अंशी है, और विषयानन्द उसका अंश है, विषयानन्द व ब्रह्मानन्द दोनों एक ही हुए तब शास्त्रकारों ने विषयानन्द की निन्दा क्यों की और महात्मा लोग भी विषयानन्द की निन्दा को क्यों करते हैं। विषयानन्द की निन्दा करनेसे तो ब्रह्मानन्दकी भी निन्दा होती है, क्योंकि दोनों का अभेद है ?

उत्तर—ब्रह्मानन्द निरुपाधिक आनन्द है, और विषयानन्द सोपाधिक आनन्द है । उपाधि के सन्बन्ध से विषयानन्द दुःख का हेतु हो जाता है, जैसे शुद्ध गंगा का जल बरसात में मल-मूत्रादिकों के सम्बन्ध से रोग का जनक हो जाता है, क्योंकि मलिन उपाधि के साथ उसका सम्बन्ध होता है, इसी तरह ब्रह्मानन्द का जो लेशमात्र आनन्द है सो भी विषयों के साथ सम्बन्ध होने से दुःख का जनक हो जाता है, वास्तव में वह ब्रह्मानन्द से भिन्न नहीं भी है, तथापि विषय-रूपी उपाधि के भेद से उसका भेद ब्रह्मानन्द से हो जाता है, और उपाधि को दुःख-रूप होने से वह भी दुःख-रूप हो जाता है । दूसरे विषयानन्द स्वल्प है और क्षणिक है, क्योंकि उसकी उपाधि स्वल्प व क्षणिक है, और इसी कारण जन्म-मरण का हेतु भी है, यदि विषयानन्द करके ही यह जीव तोष को प्राप्त होजाय, तो फिर महान् नित्यानन्द की प्राप्ति इसको कदापि न हो, और जन्म-मरण-रूपी दुःख की निवृत्ति भी इसको कदापि नहीं हो सकती । नित्यानन्द की प्राप्ति के लिये और जन्म-मरण की निवृत्ति के लिये शास्त्रकारों और महात्माओं ने विषयानन्द की निन्दा की है ।

सयश्चेति । आकाश से लेकर अन्नादिक कार्यों को उत्पन्न करके आनन्द-स्वरूप परमात्मा अपने आपको उनमें प्रवेश करता भया, और इसी लिये प्रत्येक रूप करके हर प्राणीमात्र के शरीर में रहता है, और उसीको निष्काम विद्वान् अनुभव करता है, वही लौकिक आनन्द की अवधि है, वही आनन्द-रूप आत्मा एक है, और भेद से रहित भी है, परंतु उपाधियों के भेद करके भेदवाला कहा जाता है, जो आनन्द-रूप परमात्मा निष्काम विद्वान् के शरीर में रहता है, वही आदित्यमंडलस्थ पुरुष में भी रहता है, वे दोनों एकही हैं, जो कोई अधिकारी इस प्रकार आत्मा के अभेद को जानता है, अर्थात् उस ब्रह्मात्मा को अपना आत्मा करके जानता है, वही इस लोक से मर करके फिर इस अन्नमयकोश को अर्थात् स्थूल देह को नहीं प्राप्त होता है, और प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश और आनन्दमयकोश से भी उत्क्रमण कर जाता है, अर्थात् आत्मज्ञान के उदय होते ही अज्ञान की निवृत्ति होजाती है, और अज्ञान की निवृत्ति होते ही अज्ञान का कार्य जो कि पाँच कोश हैं उनकी भी निवृत्ति होजाती है, इसी अर्थ को आगेवाला मंत्र भी कहता है ॥ ८ ॥

इति अष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

मूलम् ।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति एतꣳ ह वाव न तपति किमहꣳ साधु नाकरवम् किमहं पापमकरवमिति स य एवं विद्वानेते आत्मानꣳ स्पृणुते उभे ह्येवैष एते आत्मानꣳ स्पृणुते य एवं वेद इत्युपनिषत् ॥ ९ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

इति ब्रह्मानन्दवल्ली समाप्ता ।

पदच्छेदः ।

यतः, वाचः, निवर्त्तन्ते, अप्राप्य, मनसा, सह, आनन्दम्, ब्रह्मणः, विद्वान्, न, बिभेति, कुतश्चन, इति, एतम्, ह, वाव, न, तपति, किम्, अहम्, साधु, न, अकरवम्, किम्, अहम्, पापम्, अकरवम्, इति, सः, यः, एवम्, विद्वान्, एते, आत्मानम्, स्पृणुते, उभे, हि, एव, एषः, एते, आत्मानम्, स्पृणुते, यः, एवम्, वेद, इति, उपनिषत् ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

वाचः=वाणीरूप वेद
मनसा सह=मन द्वारा
+ यम्=जिसको
अप्राप्य=प्राप्त न होकर
यतः=जिससे
निवर्त्तन्ते=लौट आते हैं अर्थात् प्रत्यक्ष निरूपण नहीं कर सकते हैं
तम्=उस
ब्रह्मणः=ब्रह्म के
आनन्दम्=आनन्द को
विद्वान्=जाननेवाला
कुतश्चन=जन्म-मरण भय आदि से कभी
न=नहीं
बिभेति=डरता है
इति=पूर्वोक्त यह वार्ता सत्य है
किम्=हा अफसोस है कि
अहम्=मैं
साधु=सत्कर्म को
न=नहीं

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

अकरवम्=करता भया
च=और
किम्=हा अफसोस है कि
अहम्=मैं
पापम्=पापकर्म को
अकरवम्=करता भया
इति=इस प्रकार के
एवम्=ऐसे
तापः=पश्चात्ताप को
यः=जो
विद्वान्=जाननेवाला है
सः=वह
एते=पुण्य पाप दोनों कर्मों को
आत्मानम्=परमात्म-रूप
स्पृणुते=देखता है
हि=क्योंकि
एषः=यह विद्वान्
इमे=इन
उभे=दोनों को याने पुण्य-पाप कर्मों को

आत्मानम्=आत्म-रूप
एव=ही
स्पृणुते=देखता है
यः=जो
एवम्=उक्त प्रकार अखण्ड अद्वैत ब्रह्म को
वेद=जानता है
स स्वयम् जरामृत्यु-रहितोब्रह्मैव भवति = वह स्वयं पाप, पुण्य, जरा और मृत्यु-रहित अखंडानन्द पूर्ण-ब्रह्म होता है
+ एवं प्रकारं व्याख्यानम् = इस प्रकार का व्याख्यान
उपनिषत्=ब्रह्मविद्या
इति=करके
उक्ता=कहा गया है ॥

भावार्थ ।

यतो वाच इति । जो वस्तु शब्द-शक्ति का विषय होता है वही शब्द-शक्ति के ज्ञान का भी विषय होता है, सो ब्रह्म ऐसा नहीं है, इसलिये अद्वयानन्द स्वप्रकाश स्वरूप ब्रह्म से मन के सहित वाणी लौट आती है, अर्थात् कथन नहीं कर सकती है, उस ब्रह्मानन्द को जो विद्वान् प्राप्त होता है, अर्थात् साक्षात्कार कर लेता है, वह जन्म-मरणरूपी भय से छूट जाता है, क्योंकि भय का कारण जो कि अज्ञान था वह उसका नष्ट होगया है । और अज्ञान के नष्ट होते ही यावत् उसने पुण्य-पापकर्म पूर्व किये थे सब निवृत्त हो जाते हैं, और वह पश्चात्ताप नहीं करता है कि हा मैंने शुभकर्म नहीं किया, हा मैंने पापकर्म क्यों किया, क्योंकि वह पुण्य और पाप को आत्म-रूप करके ही देखता है, और इस लिये पुण्य-पाप विद्वान् के जन्म के हेतु नहीं होते हैं ॥ ९ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

इति ब्रह्मानन्दवल्ली समाप्ता ।

—:o:—

अथ भृगुवल्ली प्रारभ्यते ।

मूलम् ।

हरिः ॐ ॥ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

पदच्छेदः ।

सह, नौ, अवतु, सह, नौ, भुनक्तु, सह, वीर्यम्, करवावहै, तेजस्विनौ, अधीतम्, अस्तु, मा, विद्विषावहै, ॐ, शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

सः=वह ईश्वर
नौ=हम दोनों को अर्थात् गुरु और शिष्य को
सह=साथ
+ एव=ही
अवतु=रक्षा करे
नौ=हम दोनों को
सह=साथ
+ एव=ही
भुनक्तु=भोग प्राप्त करे
+ आवाम्=हम दोनों
सह=साथ
एव=ही
वीर्यम्=विद्या-दान और विद्या-ग्रहण सामर्थ्य को
करवावहै=प्राप्त होवें
नौ=हम दोनों का
अधीतम्=पढ़ा हुआ
तेजस्वि=अर्थ-ज्ञान योग्य हो अर्थात् सफल
अस्तु=होवे
+ आवाम्=हम दोनों
मा विद्विषावहै=पठन-पाठन में प्रमाद-रूप द्वेष को न प्राप्त होवे
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः=हमारे तापत्रयों की शान्ति होवे ॥

मूलम् ।

भृगुर्वै वारुणिः वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति तस्मा एतत्प्रोवाच अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति तꣳ होवाच यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

भृगुः, वै, वारुणिः, वरुणं, पितरम्, उपससार, अधीहि, भगवः, ब्रह्म, इति, तस्मै, एतत्, प्रोवाच, अन्नम्, प्राणम्, चक्षुः, श्रोत्रम्, मनः, वाचम्, इति, तम्, ह, उवाच, यतः, वा, इमानि, भूतानि, जायन्ते, येन, जातानि, जीवन्ति, यत्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति, तत्, विजिज्ञासस्व, तत्, ब्रह्म, इति, सः, तपः, अतप्यत, सः, तपः, तप्त्वा ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

वै=प्रसिद्ध है कि
वारुणिः=वरुण का पुत्र
भृगुः=भृगु
ब्रह्मजिज्ञासुर्भूत्वा=ब्रह्म-जिज्ञासु होकर
+ स्वम्=अपने
पितरम्=पिता
वरुणम्=वरुण के
उपससार=समीप गया
+ च=और

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

इति=ऐसा
+ उवाच=कहता भया कि
भगवः= भगवन्=हे भगवन्
ब्रह्म=ब्रह्म को
अधीहि= अध्यापय=बताओ
+ सः=वह वरुण
तस्मै=उस भृगु नामक पुत्र से

एतत्=यह
प्रोवाच=कहता भया कि
अन्नम्=अन्न को अर्थात् अन्न-मय शरीर को
प्राणम्=प्राण को
चक्षुः=नेत्र को
श्रोत्रम्=कर्ण को
मनः=मन को
वाचम्=वाणी को
इति=ब्रह्म की प्राप्ति का द्वार जान तू
+ पुनः=फिर
तम् ह=उससे
उवाच=कहता भया कि
वै=निश्चय करके
यतः=जिससे
इमानि=ब्रह्मादि तृण पर्यन्त
भूतानि=सर्वभूत
जायन्ते=उत्पन्न होते हैं
+ च=और
जातानि=उत्पन्न हुए
जीवन्ति=प्राण को धारण करते हैं और बढ़ते हैं
च=और
+ विनाशकाले=बिनाश-काल विषे
यत्=जिस प्रति
प्रयन्ति=प्रवेश करते हैं
+ च=और
अभिसंविशन्ति=तदात्मभाव को प्राप्त होते हैं अर्थात् एक-रूप होजाते हैं
इति यत्=ऐसा जो ब्रह्म है
तत्=उस
ब्रह्म=ब्रह्म को
+ त्वम्=तू हे सौम्य
विजिज्ञासस्व=विशेष करके जानने की इच्छा कर
+ इतिश्रुत्वा=ऐसा सुनकर
सः=वह भृगु
तपः=मन और इन्द्रियों की समाधानता को
अतप्यत=एकाग्र करके विचारता भया
सः=वह भृगु
तपः=विचार को
तप्त्वा=भलीभाँति विचार करके ॥

नोट—इसका संबंध आगेवाले अनुवाक के साथ है।

भावार्थ ।

आत्मवित् ज्ञानी को शुभ अशुभ किये हुए कर्म जन्मान्तर के हेतु नहीं होते हैं, यह वार्ता पिछली आनन्दवल्ली में कह आये हैं; और ब्रह्म-विद्या की समाप्ति भी उसी पूर्ववाली वल्ली में कही गई है, ब्रह्म-

विद्या के साधन जो कि तप और उपासना आदिक हैं, उनके निरूपण करने के लिये अब इस वल्ली का आरम्भ करते हैं, सो प्रथम प्रिय पुत्र के प्रति ब्रह्म-विद्या का उपदेश करे, दूसरे के प्रति न करे, क्योंकि ब्रह्म-विद्या अकसर करके जो प्रियतम हैं उन्हीं के प्रति उपदेश की गई है, और इस ग्रन्थ में ब्रह्म-विद्या की स्तुति के लिये पिता-पुत्र के संवाद को लिखते हैं।

भृगुरिति ! भृगु-नाम करके प्रसिद्ध जो कि वरुण का पुत्र वारुणि है, वह ब्रह्मजिज्ञासु होकर वरुण अपने पिता के समीप जाकर कहता भया कि हे भगवन् ! सत्यादिरूप ब्रह्म को मेरे प्रति उपदेश करो, पुत्र की वार्ता को सुनकर पिता ने कहा कि हे पुत्र ! अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन और वाग् को ब्रह्म जान, अन्न करके स्थूल शरीर का, प्राण करके पाँचों प्राणों का, चक्षु व श्रोत्र करके पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का, मन करके अन्तःकरण का, और वागिन्द्रिय करके पाँचों कर्मेन्द्रियों का ग्रहण है, ये सब ब्रह्म की उपलब्धि के द्वार हैं, इस प्रकार वरुण ने 'त्वं'-पद का अर्थ कहा, अब तत्पद का अर्थ कहते हैं। जिस करके ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यंत संपूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिस करके जीते हैं, अर्थात् प्राणों को धारण करते हैं, और बढ़ते हैं, और फिर मर करके जिस कारण में प्रवेश करते हैं, और जो जगत् के जन्मादिकों का कारण है उसीको तू ब्रह्म करके जान, इस प्रकार वरुण ने अपने पुत्र भृगु के प्रति ब्रह्म का उपदेश किया, उस उपदेश के समझने में भृगु समर्थ न होकर विचारता भया, और जानता भया कि ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

मूलम् ।

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भू-

तानि जायन्ते अन्नेन जातानि जीवन्ति अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति तꣳ होवाच तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा ॥ २ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अन्नम्, ब्रह्म, इति, व्यजानात्, अन्नात्, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि जायन्ते, अन्नेन, जातानि, जीवन्ति, अन्नम् प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति, तत्, विज्ञाय, पुनः, एव, वरुणम्, पितरम्, उपससार, अधीहि, भगवः, ब्रह्म, इति, तम्, ह, उवाच, तपसा, ब्रह्म, विजिज्ञासस्व, तपः, ब्रह्म, इति, सः, तपः, अतप्यत, सः, तपः, तप्त्वा ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
इति	ऐसा
व्यजानात्	जानता भया कि
अन्नम्	अन्न ही
ब्रह्म	ब्रह्म है
हि	क्योंकि
खलु	निश्चय करके
इमानि	ब्रह्मा से तृणपर्यंत
भूतानि	सर्वभूत
अन्नात्	अन्न से
एव	ही
जायन्ते	उत्पन्न होते हैं
च	और
जातानि	उत्पन्न हुए
अन्नेन	अन्न करके
एव	ही
जीवन्ति	जीते हैं और बढ़ते हैं
च	और
+ विनाशकाले	विनाशकाल बिषे
अन्नम्	अन्न के प्रति
प्रयन्ति	प्रवेश करते हैं
+ च	और
अभिसंविशन्ति	तादात्म्यभाव को प्राप्त होते हैं अर्थात् लीन होते हैं

इति={ इसलिये पिता के बताये हुए ये तीन लक्षणयुक्त ऐसे
तत्=उस अन्न को
ब्रह्म=ब्रह्म
विज्ञाय=जानकर
सः=वह भृगु
पुनः=फिर
एव=भी संशय-युक्त हो
पितरम्=पिता
वरुणम्=वरुण के
उपससार=समीप जाता भया
च=और
इति=इस प्रकार
+ उवाच=कहता भया कि
भगवः= भगवन् } =हे भगवन्
ब्रह्म=ब्रह्म को
+ मह्यम्=मेरे प्रति
अधीहि= अध्यापय } =कहिये
+ तदा=तब
सः=वह वरुण
तम् ह=उस भृगु के प्रति
प्रोवाच=कहता भया कि
सौम्य=हे सौम्य
तपः={ इन्द्रियों की बाह्य-वृत्ति को अन्तर्मुख करना और मन को एकाग्र करना
एव=ही
ब्रह्म=ब्रह्म-प्राप्ति का द्वार है
+ तस्मात्=इसलिये
+ त्वम्=तू
तपसा={ इन्द्रिय और मन के समाधान-रूप तप करके
ब्रह्म=ब्रह्म को
विजिज्ञासस्व=भलीभाँति जानने की इच्छा कर
+ इति श्रुत्वा=ऐसा सुनकर
सः=वह भृगु
तपः=तप को
अतप्यत=विचार करता भया
सः=वह भृगु
तपः=तप को
तप्त्वा=विचार करके ॥

नोट—इसका संबंध अगले अनुवाक से है ।

भावार्थ ।

अन्नं ब्रह्मेति । अन्न ही ब्रह्म है, क्योंकि ब्रह्मा से तृणपर्यंत सब अन्न से ही उत्पन्न होते हैं, और अन्न से ही जीवते हैं, और फिर अन्न में ही लय को प्राप्त होते हैं, अन्न से यहाँ मतलब समष्टि शरीर अभिमानी विराट् से है, क्योंकि विराट् आत्मा से ही ये सब चर-अचर प्राणी उत्पन्न होते हैं, फिर उसी करके ही प्राणों को धारण करते हैं,

फिर मर करके उसमें ही लय को प्राप्त होते हैं, पर थोड़े काल में भृगु को विचार-रूपी तप करके अन्न में उत्पत्तिमत्ता और विनाशित्वादिक दोष देख पड़े, और ख्याल किया कि जो उत्पत्तिवाला और नाशवाला होता है, वह अनित्य होता है, सो अन्न उत्पत्तिवाला और नाशवाला है, यह कैसे ब्रह्म हो सकता है, इन्हीं दोषों के निवारणार्थ भृगु अपने पिता वरुण के पास फिर जाता भया । अपने पिता वरुण से कहा कि हे भगवन् ! आप ब्रह्म को मेरे प्रति फिर कथन करो, वरुण ने अपने पुत्र भृगु से कहा कि तप करके अर्थात् विचार करके ब्रह्म को तू जान, विचार ही ब्रह्म-ज्ञान का हेतु है, वह भृगु फिर तप को करता भया ॥ २ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

मूलम् ।

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते प्राणेन जातानि जीवन्ति प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति तꣳ होवाच तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा ॥ ३ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणः, ब्रह्म, इति, व्यजानात्, प्राणात्, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते, प्राणेन, जातानि, जीवन्ति, प्राणम्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति, तत्, विज्ञाय, पुनः, एव, वरुणम्, पितरम्, उपससार, अधीहि, भगवः, ब्रह्म, इति, तम्, ह, उवाच, तपसा, ब्रह्म, विजिज्ञासस्व, तपः, ब्रह्म, इति, सः, तपः, अतप्यत, सः, तपः, तप्त्वा ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्मभावार्थ ।

इति=ऐसा
व्यजानात्=जानता भया कि
प्राणः=प्राण ही
ब्रह्म=ब्रह्म है
हि=क्योंकि
खलु=निश्चय करके
प्राणात्=प्राण से
एव=ही
इमानि=ये
भूतानि=सर्वभूत
जायन्ते=उत्पन्न होते हैं
+ च=और
जातानि=उत्पन्न हुए
प्राणेन=प्राण करके
+ एव=ही
जीवन्ति=जीते हैं और बढ़ते हैं
+ च=और
+ अन्ते=विनाशकाल विषे
प्राणम्=प्राण प्रति
प्रयन्ति=प्रवेश करते हैं
+ च=और
अभिसंविशन्ति=तद्रूप होजाते हैं
इति=ऐसा तीन लक्षण-युक्त पिता करके बताये हुए
तत्=उस प्राण-रूप ब्रह्म को
+ सः=वह भृगु
विज्ञाय=जान करके

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

पुनरेव=फिर संशय-युक्त हो
+ स्वं=अपने
पितरम्=पिता
वरुणम्=वरुण के
उपससार=समीप जाता भया
+ च=और
+ उवाच=कहता भया कि
भगवः= भगवन्=हे भगवन्!
ब्रह्म=ब्रह्म को
+ मह्यम्=मेरे अर्थ
अधीहि= अध्यापय=कहिये
+ तदा=तब
+ सः=वह वरुण
तम् ह=उस भृगु के प्रति
उवाच=कहता भया कि
तपः=विचार
इति=ही
ब्रह्म=ब्रह्म-प्राप्ति का द्वार है
त्वम्=तू
तपसा=सूक्ष्म विचार करके
एव=अवश्य
ब्रह्म=ब्रह्म को
विजिज्ञासस्व=भली प्रकार जानने की इच्छा कर
+ एवं श्रुत्वा=ऐसा सुन करके
सः=वह भृगु
तपः=विचार को

अतप्यत=विचार करता भया	तपः=विचार को
सः=वह	तप्त्वा=विचार करके ॥

नोट—इसका संबंध अगले अनुवाक से है ।

भावार्थ ।

प्राण इति । प्राण ही ब्रह्म है, यहाँ प्राण से मतलब हिरण्यगर्भ से है, क्योंकि प्राण जो हिरण्यगर्भ है उसीसे निश्चय करके ये संपूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होकर उसी प्राण करके जीते हैं, और फिर मर करके प्राण में ही लयभाव को प्राप्त होते हैं, पर जब विचार किया, तब मालूम हुआ कि प्राण नामक हिरण्यगर्भ भी उत्पत्ति नाशवाला है, वह कैसे ब्रह्म हो सकता है, ऐसा विचार करके फिर अपने पिता वरुण के पास गया, और कहा, हे भगवन् ! मेरे प्रति ब्रह्म का उपदेश करो । उस वरुण ने अपने पुत्र को फिर कहा, हे पुत्र ! तप करके अर्थात् विचार करके ब्रह्म को जान, क्योंकि विचार से विना ब्रह्म नहीं जाना जाता है । भृगु फिर विचार करके जानता भया ॥ ३ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

मूलम् ।

मनो ब्रह्मेति व्यजानात् मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते मनसा जातानि जीवन्ति मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति तꣳ होवाच तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा ॥ ४ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, ब्रह्म, इति, व्यजानात्, मनसः, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते, मनसा, जातानि, जीवन्ति, मनः, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति, तत्, विज्ञाय, पुनः, एव, वरुणं, पितरम्, उपससार, अधीहि, भगवः, ब्रह्म, इति, तम्, ह, उवाच, तपसा, ब्रह्म, विजिज्ञासस्व, तपः, ब्रह्म, इति, सः, तपः, अतप्यत, सः, तपः, तप्त्वा ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

इति=ऐसा
व्यजानात्=जानता भया कि
मनः=मन ही
ब्रह्म=ब्रह्म है
हि=क्योंकि
खलु=निश्चय करके
मनसः=मन से
एव=ही
इमानि=सर्वभूत
जायन्ते=उत्पन्न होते हैं
च=और
जातानि=उत्पन्न हुए
मनसा=मन करके
एव=ही
जीवन्ति=जीते हैं और बढ़ते हैं
+ च=और
+ अन्ते=विनाशकाल विषे
मनः=मन प्रति
प्रयन्ति=प्रवेश करते हैं
+ च=और
अभिसंविशन्ति=तन्मय होजाते हैं

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

इति=ऐसे तीन लक्षण-युक्त पिता करके उपदेश किये हुए
तत्=उस मनोमय ब्रह्म को
+ सः=वह भृगु
विज्ञाय=जान करके
पुनरेव=फिर भी संशय-युक्त हो
+ स्वम्=अपने
पितरम्=पिता
वरुणम्=वरुण के
उपससार=समीप जाता भया
+ च=और
उवाच=कहता भया कि
भगवः= भगवन्=हे भगवन् !
ब्रह्म=ब्रह्म को
+ मह्यम्=मेरे अर्थ
अधीहि= अध्यापय=कहिये
+ तदा=तब
+ सः=वह वरुण
तम् ह=उस भृगु के प्रति
इति=ऐसा

उवाच=कहता भया कि
+हे सौम्य=हे सौम्य !
तपः=विचार
इति=ही
ब्रह्म=ब्रह्म की प्राप्ति का द्वार है
+ त्वम्=तू
तपसा=विचार करके
एव=अवश्य
ब्रह्म=ब्रह्म को
विजिज्ञासस्व=भले प्रकार जानने की इच्छा कर
+इति श्रुत्वा=ऐसा सुनकर
सः=वह भृगु
तपः=विचार को
अतप्यत=विचार करता भया
सः=वह भृगु
तपः=विचार को
तप्त्वा=विचार करके ॥

नोट—इसका संबंध अगले अनुवाक से है ।

भावार्थ ।

मन इति । मन ही ब्रह्म है, मन से यहाँ मतलब समष्टि अन्तः-करण-रूपी हिरण्यगर्भ है, उसीको ब्रह्म-रूप करके भृगु जानता भया, क्योंकि समष्टि-रूपी मन के संकल्प से ही संपूर्ण मनुष्यादि प्राणी उत्पन्न होते हैं, फिर उसी करके ही जीते हैं, और फिर मर करके उसमें ही लयभाव को प्राप्त होते हैं, थोड़े काल पीछे विचार से मालूम हुआ कि मन भी उत्पत्ति-नाशवाला और परिच्छिन्न है तब ऐसा मन ब्रह्म कैसे हो सकता है, ब्रह्म तो नित्य है, ऐसा विचार करके अपने पिता वरुण के पास फिर भृगु जाता भया और अपने पिता वरुण से कहा, हे भगवन् ! मेरे प्रति ब्रह्म का उपदेश करो, उस भृगु के प्रति पिता कहता भया, हे पुत्र ! तप करके अर्थात् विचार करके ब्रह्म को जान, विचार करके ही ब्रह्म जाना जाता है, विचार ही ब्रह्म के जानने में कारण है, वह भृगु फिर विचार करता भया, और विचार करके भृगु ने ब्रह्म को जाना ॥ ४ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

मूलम् ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि

भूतानि जायन्ते विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति तꣳ होवाच तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा ॥ ५ ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

विज्ञानम्, ब्रह्म, इति, व्यजानात्, विज्ञानात्, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते, विज्ञानेन, जातानि, जीवन्ति, विज्ञानम्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति, तत्, विज्ञाय, पुनः, एव, वरुणम्, पितरम्, उपससार, अधीहि, भगवः, ब्रह्म, इति, तम्, ह, उवाच, तपसा, ब्रह्म, विजिज्ञासस्व, तपः, ब्रह्म, इति, सः, तपः, अतप्यत, सः, तपः, तप्त्वा ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

इति=ऐसा
व्यजानात्=जानता भया कि
विज्ञानम्=विज्ञान ही
ब्रह्म=ब्रह्म है
हि=क्योंकि
खलु=निश्चय करके
विज्ञानात्=विज्ञान से
+ एव=ही
इमानि=ये
भूतानि=सर्वभूत
जायन्ते=उत्पन्न होते हैं
+ च=और
जातानि=उत्पन्न हुए

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

विज्ञानेन=विज्ञान करके
+ एव=ही
जीवन्ति=जीते हैं और बढ़ते हैं
+ च=और
+ अन्ते=विनाशकाल विषे
विज्ञानम्=विज्ञान प्रति
प्रयन्ति=प्रवेश करते हैं
+ च=और
अभिसंविशन्ति=तन्मय होजाते हैं
इति=ऐसे तीन लक्षण करके युक्त पिता के उपदेश किए हुए

तत्=उस विज्ञान-रूप ब्रह्म को
+ सः=वह भृगु
विज्ञाय=जान करके
पुनरेव=फिर भी संशय-युक्त हो
+ स्वम्=अपने
पितरम्=पिता
वरुणम्=वरुण के
उपससार=समीप जाता भया
+ च=और
+ उवाच=कहता भया कि
भगवः= भगवन् } =हे भगवन् !
ब्रह्म=ब्रह्म को
+ मह्यम्=मेरे अर्थ
अधीहि= अध्यापय } =कहिये
+ तदा=तब
+ सः=वह वरुण
तम् ह=उस भृगु प्रति
इति=ऐसा
उवाच=कहता भया कि
+ हे सौम्य=हे सौम्य !
तपः=विचार
इति=ही
ब्रह्म=ब्रह्म की प्राप्ति का द्वार है
+ त्वम्=तू
तपसा=विचार करके
एव=ही
ब्रह्म=ब्रह्म को
विजिज्ञासस्व=भली प्रकार जानने की इच्छा कर
+ एवं श्रुत्वा=ऐसा सुनकर
सः=वह भृगु
तपः=विचार को
अतप्यत=विचार करता भया
सः=वह भृगु
तपः=विचार को
तप्त्वा=विचार करके ॥

नोट—इसका संबंध अगले अनुवाक से है।

भावार्थ ।

विज्ञानमिति । विज्ञान ही ब्रह्म है, यहाँ विज्ञान से मतलब हिरण्य-गर्भ की समष्टि आधिदैविक बुद्धि है, जिसको महत्तत्त्व भी कहते हैं, क्योंकि विज्ञान से ही संपूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं, विज्ञान करके जीते हैं, फिर मर करके विज्ञान में ही लयभाव को भी प्राप्त होते हैं, फिर भृगु को विचार से फुरा कि विज्ञान भी तो उत्पत्ति-नाशवाला है, और परिच्छिन्न है, ब्रह्म तो नित्य है, विज्ञान ब्रह्म कैसे हो सकता है, इस संशय को प्राप्त होकर भृगु फिर अपने पिता के पास गया, और पिता

से कहने लगा, हे भगवन् ! हमको ब्रह्म का उपदेश करो, उस भृगु के प्रति पिता ने कहा, तप ही ब्रह्म है, तप करके अर्थात् विचार करके तू ब्रह्म को जान, वह फिर विचार करता भया और विचार करके ही ब्रह्म को जानता भया ॥ ५ ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

मूलम् ।

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता स य एवं वेद प्रतितिष्ठति अन्नवानन्नादो भवति महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन महान् कीर्त्या ॥ ६ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

आनन्दः, ब्रह्म, इति, व्यजानात्, आनन्दात्, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते, आनन्देन, जातानि, जीवन्ति, आनन्दम्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति, सा, एषा, भार्गवी, वारुणी, विद्या, परमे, व्योमन्, प्रतिष्ठिता, सः, यः, एवम्, वेद, प्रतितिष्ठति, अन्नवान्, अन्नादः, भवति, महान्, भवति, प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, महान्, कीर्त्या ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
इति=ऐसा	
व्यजानात्=जानता भया कि	
आनन्दः=आनन्द ही	
ब्रह्म=ब्रह्म है	
हि=क्योंकि	
खलु=निश्चय करके	
आनन्दात्=आनन्द से	
एव=ही	

इमानि=ये
भूतानि=सर्वभूत
जायन्ते=उत्पन्न होते हैं
+ च=और
जातानि=उत्पन्न हुए
आनन्देन=आनन्द करके
+ एव=ही
जीवन्ति=जीते हैं और बढ़ते हैं
+ च=और
+ अन्ते=विनाशकाल विषे
आनन्दम्=आनन्द प्रति
प्रयन्ति=प्रवेश करते हैं
च=और
अभिसंविशन्ति=तन्मय होजाते हैं
इति=इस प्रकार वारंवार विचार करके सर्वान्तर आनन्द को वह भृगु ब्रह्म ही जानता भया
सा=वही
एषा=यह
विद्या=ब्रह्म-विद्या
भार्गवी=भृगु करके विदित
+ च=और
वारुणी=वरुण करके कथित
परमे=उत्कृष्ट
व्योमन्= व्योम्नि=हृदयाकाश बुद्धि-रूपी गुहा विषे
प्रतिष्ठिता=स्थित है
यः=जो
एवम्=इस प्रकार ब्रह्म-विद्या को
वेद=जानता है
सः=वह
प्रतितिष्ठति=आनन्द-रूप परब्रह्म विषे स्थित होता है अर्थात् स्वयं ब्रह्म हो जाता है
+ च=और
+दृष्टं च फलं तस्य एवं प्रकारेण अस्मिन् शरीरे एव भवति=दृश्यमान फल भी उसको इसी शरीर विषे इस प्रकार प्राप्त होता है कि
सः=वह
+ अन्नवान्=विशेष अन्नवाला
+ च=और
अन्नादः=अन्न के भक्षण करने को सामर्थ्यवाला
भवति=होता है
+ च=और
प्रजया=सन्तान करके
पशुभिः=गवाश्वादि पशुओं करके
ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्म-तेज करके
महान्=ऐश्वर्यवान्
भवति=होता है
+ च=और
कीर्त्या=कीर्ति करके
अपि=भी
महान्=श्रीमान्
भवति=होता है ॥

भावार्थ ।

आनन्दो ब्रह्मेति । आनन्द-रूप ही ब्रह्म है, ऐसा भृगु जानता भया, यहाँ आनन्द से मतलब ब्रह्मानन्द से है, क्योंकि उसी आनन्द-रूप ब्रह्म से ही संपूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं, उसी करके जीते हैं, फिर मर करके उसी आनन्द-रूप ब्रह्म में लयभाव को प्राप्त होते हैं, इसलिये आनन्द-रूप ही ब्रह्म है, इसलिये विचार करके ही भृगु ने ब्रह्म को जाना है, ब्रह्म के जानने का मुख्य साधन विचार ही है, सो यह वरुण करके कही हुई और भृगु करके पूछी हुई ब्रह्म-विद्या है, वही हार्दाकाश में स्थित है, अब पूर्वोक्त ब्रह्म-विद्या के फल को कहते हैं। जो अधिकारी पूर्वोक्त रीति से इस ब्रह्म-विद्या को जानता है, वह पर-ब्रह्म में ही स्थित होता है, अर्थात् ब्रह्म-रूप ही होजाता है, जीवन्मुक्त विद्वान् में देह-पात के पूर्व अविद्या लेश-मात्र रह जाती है, इसलिये वह ब्रह्म-रूप ही है, ऐसा जो विद्वान् है, उसके पास बहुत अन्न होता है, और उसकी जठराग्नि बड़ी तेज होती है, अर्थात् वह नीरोग होता है, और पुत्रादिकों करके और पशुओं करके वृद्धि को प्राप्त होता है, और ब्रह्मतेज करके महान् कीर्ति को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अन्नं न निन्द्यात् तद्व्रतम् प्राणो वाऽन्नम् शरीरमन्नादम् प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम् शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति अन्नवानन्नादो भवति महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन महान् कीर्त्या ॥ ७ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अन्नम्, न, निन्द्यात्, तत्, व्रतम्, प्राणः, वै, अन्नम्, शरीरम्, अन्नादम्, प्राणे, शरीरम्, प्रतिष्ठितम्, शरीरे, प्राणः, प्रतिष्ठितः, तत्, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्, सः, यः, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्, वेद, प्रतितिष्ठति, अन्नवान्, अन्नादः, भवति, महान्, भवति, प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, महान्, कीर्त्या ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

+ एवं पञ्चकोशविचारेण = इस प्रकार पञ्चकोश के विचार द्वारा
+ ब्रह्मविदः=ब्रह्मवेत्ता का
तत्=यह
व्रतम्=नियम है कि
अन्नम्=अन्न की
+ कदापि=कभी
न=नहीं
निन्द्यात्=निन्दा करे

अन्नम्=अन्न
वा=ही
प्राणः=प्राण है
+ च=और
+ शरीरम्=प्राण-युक्त शरीर
अन्नादम्=अन्न का भक्षण करनेवाला है
+ च=और
यत्=चूँकि
शरीरम्=शरीर
प्राणे=प्राण बिषे
प्रतिष्ठितम्=स्थित है
च=और
प्राणः=प्राण
शरीरे=शरीर बिषे
प्रतिष्ठितः=स्थित है
तत्=इसलिये
एतत्=यह
अन्नम्=अन्न
अन्ने=अन्न बिषे
प्रतिष्ठितम्=स्थित है

यः=जो उपासक
एतत्=इस
अन्नम्=अन्न को
अन्ने=अन्न बिषे
प्रतिष्ठितम्=स्थित
वेद=जानता है
सः=वह
प्रतितिष्ठति= ब्रह्म बिषे स्थित होता है अर्थात् स्वयं ब्रह्म हो जाता है

+ दृष्टं च
फलं तस्य
अस्मिन्
शरीरे एवं
प्रकारेण
भवति
} = दृश्यमान फल भी उसको इस प्रकार इस शरीर बिषे होता है कि

+ सः=वह
अन्नवान्=विशेष अन्नवाला
+ भवति=होता है
+ च=और
अन्नादः=अन्न के भक्षण करने में सामर्थ्यवाला
भवति=होता है

+ च=और
+ सः=वह
प्रजया=सन्तति करके
पशुभिः=गवाश्वादि पशुओं करके
ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्म-तेज करके
महान्=ऐश्वर्यवान्
भवति=होता है
+ च=और
कीर्त्या=कीर्ति करके
+ अपि=भी
महान्=श्रीमान्
+ भवति=होता है ॥

भावार्थ ।

अब अन्न की स्तुति के लिये कर्तव्य को कहते हैं ।

अन्नमिति । विद्वान् अन्न की निन्दा कदापि न करे, यदृच्छा करके अर्थात् प्रारब्ध-योग से जैसा कैसा अन्न मिल जाय उसको आदर-पूर्वक भक्षण करे, अब अन्न की उपासना को कहते हैं, पाँच वृत्तियोंवाला प्राण-रूप जो वायु है सो अन्न है, क्योंकि अन्न से ही प्राण की स्थिति है, और शरीर जो है सो अन्नाद है, अर्थात् अन्न का भक्षण करने वाला है, क्योंकि शरीर विना प्राण के स्थित नहीं रह सकता है, इसलिये प्राणों में अन्न बुद्धि को करे, और शरीर में अन्नाद बुद्धि को करे, और चूंकि शरीर में प्राण प्रतिष्ठित हैं इसलिये दोनों परस्पर अन्न अन्नाद-रूप हैं, जो पुरुष इस प्रकार दोनों को अर्थात् प्राण और शरीर को अन्न अन्नाद-रूप करके जानता है, वह उपासक शरीर और प्राण-रूप करके स्थित होता है, अर्थात् वह चिरकाल तक जीनेवाला होता है, उसके पास बहुत सा अन्न होता है, और वह बहुत से अन्न का भक्षण करनेवाला होता है और बहुत से उसके पुत्र-पौत्र भी होते हैं,

फिर उसके घर में बहुत गाय, घोड़े आदि पशु भी होते हैं, ब्रह्म तेजवाला और महान् कीर्तिवाला भी होता है ॥ ७ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अन्नं न परिचक्षीत तद्व्रतम् आपो वाऽन्नम् ज्योतिरन्नादम् अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् वेद प्रतितिष्ठति अन्नवानन्नादो भवति महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन महान् कीर्त्या ॥ ८ ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अन्नम्, न, परिचक्षीत, तत्, व्रतम्, आपः, वा, अन्नम्, ज्योतिः, अन्नादम्, अप्सु, ज्योतिः, प्रतिष्ठितम्, ज्योतिषि, आपः, प्रतिष्ठिताः, तत्, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्, सः, यः, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्, वेद, प्रतितिष्ठति, अन्नवान्, अन्नादः, भवति, महान्, भवति, प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, महान्, कीर्त्या ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्मभावार्थ ।
+ एवं पञ्चकोशविचारेण	इस प्रकार पञ्चकोशों के विचार द्वारा
+ ब्रह्मविदः	ब्रह्मवेत्ता का
तत्	यह
व्रतम्	नियम है कि
अन्नम्	अन्न को
+ कदापि	कभी
न	नहीं
परिचक्षीत	त्याग करे
च	क्योंकि
आपः	जल
वा	ही
अन्नम्	अन्न है
+ च	और
ज्योतिः	ज्योति
अन्नादम्	अन्न का भक्षण करनेवाला है

+ यत्=चूंकि
ज्योतिः=ज्योति
अप्सु=जलों विषे
प्रतिष्ठितम्=स्थित है
च=और
आपः=जल
ज्योतिषि=ज्योति विषे
प्रतिष्ठिताः=स्थित है
तत्=इसलिये
एतत्=यह
अन्नम्=अन्न
अन्ने=अन्न विषे
प्रतिष्ठितम्=स्थित है
यः=जो
एतत्=इस
अन्नम्=अन्न को
अन्ने=अन्न विषे
प्रतिष्ठितम्=स्थित
वेद=जानता है
सः=वह
प्रतितिष्ठति=ब्रह्म विषे स्थित होता है अर्थात् स्वयं ब्रह्म हो जाता है
+ च=और
दृष्टं च फलं तस्य एवं अस्मिन् शरीरे एव भवति=दृश्यमान फल भी उसको इसी शरीर विषे इस प्रकार होता है कि
+ सः=वह
अन्नवान्=विशेष अन्नवाला
भवति=होता है
च=और
अन्नादः=अन्न के भक्षण करने में सामर्थ्यवाला
भवति=होता है
+ च=और
प्रजया=संतति करके
पशुभिः=गवाश्वादि पशुओं करके
ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्मतेज करके
महान्=ऐश्वर्यवान्
भवति=होता है
+ च=और
कीर्त्या=कीर्ति करके
महान् भवति=श्रीमान् होता है ॥

भावार्थ ।

अन्नमिति । अन्न के उपासक को चाहिये कि स्वल्प और मोटे अन्न को भी त्याग न करे, जो अन्न भोजन के पात्र में प्राप्त होजाय, उसको स्वीकार करे और प्रसन्नता-पूर्वक उसको भक्षण करे ऐसा उपासक इस प्रकार विचार करे कि जल अन्न है, और जो जठराग्नि है सो अन्नाद है, अर्थात अन्न का भक्षण करनेवाला है, जल में अग्नि

स्थित है, और अग्नि में जल स्थित है, इसलिये तेज और जल परस्पर अन्न अन्नादरूप हैं, जो पुरुष जल और तेज को अन्न अन्नादरूप करके जानता है वह चिरकालपर्यंत स्थित होता है, उसके पास बहुत अन्न होता है, और वह बहुत अन्न को भक्षण करनेवाला भी होता है, और उसके पास बहुत से पशु होते हैं, और ब्रह्म तेजवाला और महान् कीर्तिवाला भी होता है ॥ ८ ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

मूलम् ।

अन्नं बहु कुर्वीत तद्व्रतम् पृथिवी वाऽन्नम् आकाशोऽन्नादः पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् वेद प्रतितिष्ठति अन्नवानन्नादो भवति महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन महान् कीर्त्या ॥ ९ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

अन्नम्, बहु, कुर्वीत, तत्, व्रतम्, पृथिवी, वा, अन्नम्, आकाशः, अन्नादः, पृथिव्याम्, आकाशः, प्रतिष्ठितः, आकाशे, पृथिवी, प्रतिष्ठिता, तत्, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्, सः, यः, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्, वेद, प्रतितिष्ठति, अन्नवान्, अन्नादः, भवति, महान्, भवति, प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, महान्, कीर्त्या ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
+ एवं पञ्चकोशविचारेण	इस प्रकार पञ्चकोशों के विचार द्वारा
+ ब्रह्मविदः	ब्रह्मवेत्ता का
तत्	यह
व्रतम्	नियम है कि
अन्नम्	अन्न को ही

बहु=श्रेष्ठ
कुर्वीत=समझे
पृथिवी=पृथिवी
वा=ही
अन्नम्=अन्न है
आकाशः=आकाश
अन्नादः=अन्न का भक्षक है
+ यत्=चूंकि
पृथिव्याम्=पृथिवी बिषे
आकाशः=आकाश
प्रतिष्ठितः=स्थित है
+ च=और
आकाशे=आकाश बिषे
पृथिवी=पृथिवी
प्रतिष्ठिता=स्थित है
तत्=इसलिये
एतत्=यह
अन्नम्=अन्न
अन्ने=अन्न बिषे
प्रतिष्ठितम्=स्थित है
यः=जो
एतत्=इस
अन्नम्=अन्न को
अन्ने=अन्न बिषे
प्रतिष्ठितम्=स्थित
वेद=जानता है
सः=वह
प्रतितिष्ठति=ब्रह्म बिषे स्थित होता है अर्थात् स्वयं ब्रह्म हो ताजा है
दृष्टं च फलं तस्य एवं अस्मिन् शरीर एव भवति=दृश्यमान फल भी उसको इस प्रकार इसी शरीर बिषे होता है कि
सः=वह
अन्नवान्=विशेष अन्नवाला
+ भवति=होता है
च=और
अन्नादः=अन्न के भक्षण करने बिषे सामर्थ्यवाला
भवति=होता है
+ च=और
प्रजया=संतति करके
पशुभिः=पशुओं करके
ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्म-तेज करके
महान्=श्रीमान्
भवति=होता है
+ च=और
कीर्त्या=कीर्ति करके
+ अपि=भी
महान्=ऐश्वर्यवान्
+ भवति=होता है ॥

भावार्थ ।

अन्नमिति । बहुत से अन्न को संपादन करे यह उस उपासक के लिये नियम विधान किया गया है, पृथिवी अन्न है, आकाश अन्नाद है,

आकाश अन्न है, पृथिवी अन्नाद है, याने परस्पर दोनों अन्न अन्नाद हैं, जैसे घट के अंदर आकाश स्थित है, वैसे पृथिवी में भी आकाश स्थित है, और आकाश में पृथिवी स्थित है, इस रीति से पृथिवी और आकाश दोनों एक दूसरे में स्थित हैं, अब इस उपासना के फल को कहते हैं। जो पुरुष पृथिवी और आकाश को अन्न अन्नाद-रूप करके जानता है वह एक को दूसरे में स्थित जानता है, अर्थात् इस प्रकार दोनों में अन्न अन्नाद दृष्टि को करता है, ऐसा विचार करनेवाला पुरुष चिरकाल तक जीता है, उसके बहुत से पुत्र, पौत्र और पशु आदिक होते हैं, और ब्रह्म-तेज करके और कीर्ति करके भी युक्त होता है ॥ ६ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

मूलम्।

न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत तद्व्रतम् तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात् आराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते एतद्वै मुखतोऽन्नꣳ राद्धम् मुखतोऽस्मा अन्नꣳ राध्यते एतद्वै मध्यतो अन्नꣳ राद्धम् मध्यतोऽस्मा अन्नꣳ राध्यते एतद्वा अन्ततोऽन्नꣳ राद्धम् अन्ततोऽस्मा अन्नꣳ राध्यते ॥ १ ॥

पदच्छेदः।

न, कञ्चन, वसतौ, प्रत्याचक्षीत, तत्, व्रतम्, तस्मात्, यया, कया, च, विधया, बह्वन्नम्, प्राप्नुयात्, आराधि, अस्मै, अन्नम्, इति, आचक्षते, एतत्, वै, मुखतः, अन्नम्, राद्धम्, मुखतः, अस्मै, अन्नम्, राध्यते, एतत्, वै, मध्यतः, अन्नम्, राद्धम्, मध्यतः, अस्मै, अन्नम्, राध्यते, एतत्, वै, अन्ततः, अन्नम्, राद्धम्, अन्ततः, अस्मै, अन्नम्, राध्यते ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
पञ्चकोशोपासकस्य	पञ्चकोशों के उपासक का
तत्	यह
व्रतम्	नियम है कि
वसतौ स्वगृहे आगतम्	अपने घर विषे आये हुए
कञ्चन	किसी को
न	न
प्रत्याचक्षीत	इन्कार करे
+ च	और
तस्मात्	इसीलिये
यया कया विधया	जिस किस विधि से याने किसी न किसी तरह से
बह्वन्नम्	विशेष अन्न
प्राप्नुयात्	प्राप्त करे
च	और
अस्मै	उस अतिथि के लिये
अन्नम्	अन्न को
आराधि	सिद्ध करे याने तैयार करके अर्पण करे
इति	ऐसा
आचक्षते	वृद्ध लोग कह गए हैं याने कहते आए हैं
+ यदि	अगर
एतत्	यह
अन्नम्	अन्न

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
मुखतः	प्रथम वय में सत्कार-पूर्वक
राद्धम्	दिया गया है
+ ततः	तो
अस्मै	उस दाता के लिये
मुखतः	प्रथम वय बिषे ही सत्कार-पूर्वक
एव	निश्चय करके
अन्नम्	अन्न
राध्यते	मिलता है
वै	अगर
एतत्	यह
अन्नम्	अन्न
मध्यतः	मध्य वय बिषे सत्कार-पूर्वक अतिथि को
राद्धम्	दिया गया है
ततः	तो
अस्मै	उस अन्न-दाता के लिये
मध्यतः	मध्य वय बिषे सत्कार-पूर्वक
अन्नम्	अन्न
राध्यते	मिलता है
वै	अगर
एतत्	यह
अन्नम्	अन्न
अन्ततः	अंत वय बिषे सत्कार-पूर्वक अतिथि को

राद्धम्=दिया गया है
+ तदा=तो
अस्मै=उस अन्न-दाता के लिये
अन्ततः=अंत वय विषे सत्कार-पूर्वक
अन्नम्=अन्न
राध्यते=मिलता है ॥

भावार्थ ।

न कञ्चनेति । पृथिवी और आकाश की, जो पुरुष अन्न अन्नाद गुण करके उपासना करता है, उसके नियम के विधान कहते हैं । यदि कोई मनुष्य उसके घर में निवास करने के लिसे प्राप्त होजाय, तब उसका त्याग कदापि न करे अर्थात् उसको हटावे नहीं, उसके प्रति अन्न अवश्य देवे, इसलिये येन-केन प्रकार करके वह अन्न का संग्रह करे और अतिथियों को खिलावे । जो अतिथि की पूजा करके अतिथि के प्रति अन्न को खिलाता है उस अन्नदाता को जितना वह अन्न देता है उससे हज़ारगुना बल्कि लाखोंगुना अधिक अन्न जन्मान्तर में प्राप्त होता है, और जिस अवस्था में देता है उसी उसी अवस्था में उसको मिलता है, याने जो प्रथम अवस्था में अन्न का दान करता है उसको जन्मान्तर के प्रथम अवस्था में ही अन्न मिलता है, जो मध्यम अवस्था में दान करता है उसको मध्यम अवस्था में अन्न मिलता है, जो वृद्धावस्था में दान करता है उसको वृद्धावस्था में ही अन्न मिलता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

य एवं वेद क्षेम इति वाचि योगक्षेम इति प्राणापानयोः कर्मेति हस्तयोः गतिरिति पादयोः विमुक्तिरिति पायौ इति मानुषीः समाज्ञाः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

यः, एवम्, वेद, क्षेम, इति, वाचि, योगक्षेम, इति, प्राणापानयोः,

कर्म, इति, हस्तयोः, गतिः, इति, पादयोः, विमुक्तिः, इति, पायौ, इति, मानुषीः, समाज्ञाः ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

यः=जो

एवम्=इस प्रकार अन्न-दान और उसके फल को

वेद=जानता है

सः=वह

+ यथोक्तं फलमाप्नोति=यथोक्त फल को प्राप्त होता है

इदानीं ब्रह्मोपासनप्रकार उच्यते=अब ब्रह्म की उपासना का विधान कहा जाता है

क्षेम=कल्याण-रूप ब्रह्म

वाचि=वाणी बिषे स्थित है

इति=ऐसी उपासना करनी योग्य है

योगक्षेम=अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति (योग) और प्राप्त वस्तु की रक्षा (क्षेम) ये दोनों ब्रह्म-रूप

प्राणापानयोः=प्राण और अपान बिषे स्थित हैं

इति=ऐसी उपासना करनी योग्य है

कर्म=कर्म-रूप ब्रह्म

हस्तयोः=दोनों हाथों बिषे स्थित है

इति=ऐसी उपासना करनी योग्य है

गतिः=गमन-रूप ब्रह्म

पादयोः=चरणों बिषे स्थित है

इति=ऐसी उपासना करनी योग्य है

विमुक्तिः=मल-मूत्र विसर्जन-रूप ब्रह्म

पायौ=गुदा बिषे स्थित है

इति=ऐसी उपासना करनी योग्य है

इति=इस प्रकार

एताः=ये उक्त पाँच उपासनाएँ

मानुषीः मानुष्यः=मनुष्य-लोक-संबंधी

समाज्ञाः=उपासना हैं ॥

भावार्थ ।

य इति । जो पुरुष पूर्वोक्त प्रकार करके अन्न के माहात्म्य को और उसके दान के फल को जानता है उसीको पूर्वोक्त फल की प्राप्ति भी होती है ।

अब ब्रह्म की उपासना के प्रकरण को कहते हैं—ब्रह्म शरीरों में योग-क्षेम करके स्थित है, याने जो वस्तु प्राप्त की जाती है वह ब्रह्म ही करके की जाती है, और प्राप्त वस्तु की जो रक्षा की जाती है वह ब्रह्म ही करके की जाती है, प्राप्त वस्तु की रक्षा करने का नाम क्षेम है, और अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग है, योग-रूप करके वह ब्रह्म प्राण में स्थित है, और क्षेम-रूप करके अपान में स्थित है, इस प्रकार योग-क्षेम-रूप करके ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये। ब्रह्म कर्म-रूप करके हाथों में स्थित है, गति-रूप करके पावों में स्थित है, गुदा में विसर्ग-रूप करके स्थित है, इस प्रकार ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये, यह आध्यात्मिक उपासना है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ दैवीः तृप्तिरिति वृष्टौ बलमिति विद्युति यश इति पशुषु ज्योतिरिति नक्षत्रेषु प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, दैवीः, तृप्तिः, इति, वृष्टौ, बलम्, इति, विद्युति, यशः, इति, पशुषु, ज्योतिः, इति, नक्षत्रेषु, प्रजातिः, अमृतम्, आनन्दः, इति, उपस्थे ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

अथ=अब
दैवीः=देवलोक-संबंधिनी
+ समाज्ञाः=उपासनाएँ
+ उच्यन्ते=कही जाती हैं
तृप्तिः=अन्नोत्पत्ति द्वारा तृप्ति-रूप ब्रह्म
वृष्टौ=वृष्टि बिषे स्थित है

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

इति=ऐसी उपासना करनी योग्य है
बलम्=बल-रूप ब्रह्म
विद्युति=विद्युत् बिषे स्थित है
इति=ऐसी उपासना करनी योग्य है

यशः=दुग्ध और आरोहणादि यश-रूप ब्रह्म
पशुषु=गवाश्वादि पशुओं बिषे स्थित है
इति=ऐसी उपासना करनी योग्य है
ज्योतिः=तेजो-रूप ब्रह्म
नक्षत्रेषु=सूर्य, चन्द्र आदिकों बिषे स्थित है
इति=ऐसी उपासना करनी योग्य है

प्रजातिः=पुत्रोत्पत्ति-रूप ब्रह्म और
अमृतम्=पुत्र-पौत्रोत्पत्ति द्वारा ऋण-त्रय की निर्मुक्ति-रूप अमृत-तुल्य ब्रह्म और
आनन्दः=आनन्द-रूप ब्रह्म जो स्त्री-गमन बिषे प्राप्त होता है वह
उपस्थे=उपस्थ इन्द्रिय बिषे स्थित है
इति=ऐसी उपासना करनी योग्य है ॥

भावार्थ ।

अथ दैवीरिति । अब देवता-संबंधी अर्थात् आधिदैविक उपासना का कथन करते हैं ।

तृप्तिरिति । तृप्ति नाम वृष्टि का है, क्योंकि वृष्टि ही अन्नादि द्वारा तृप्ति का हेतु है, सो ब्रह्म ही तृप्ति-रूप करके वृष्टि में स्थित है, ऐसी उपासना करनी चाहिये । तडित् जो बिजली सब शरीरों बिषे स्थित है, और जीवों को चेष्टा करने में सामर्थ्य करती है, उसमें बल-रूप करके ब्रह्म स्थित है, ऐसी उपासना करनी चाहिये, और यश-रूप करके पशुओं में भी वह ब्रह्म स्थित है, याने दुग्ध, दही, घृत, सवारी आदि जो फल मिलता है वह सब ब्रह्म से ही मिलता है, और प्रकाश-रूप करके नक्षत्रों में ब्रह्म स्थित है । और पुत्र का जन्म पितरों को उनके ऋण-त्रय से छुड़ाता है, यही ऋण-त्रय से छूटना ही अमृत-रूप ब्रह्म है, और स्त्री-संसर्ग-जन्य जो सुख है सो पुत्र-रूप करके, आनंद-रूप करके और ऋण-त्रय मोचन-रूप करके ब्रह्म ही उपस्थेन्द्रिय में अर्थात् लिङ्ग-इन्द्रिय में स्थित है, ऐसी उपासना करनी चाहिये ॥ ३ ॥

मूलम् ।

सर्वमित्याकाशे तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत प्रतिष्ठावान् भवति तन्मह इत्युपासीत महान् भवति तन्मन इत्युपासीत मानवान् भवति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वम्, इति, आकाशे, तत्, प्रतिष्ठा, इति, उपासीत, प्रतिष्ठावान्, भवति, तत्, महः, इति, उपासीत, महान्, भवति, तत्, मनः, इति, उपासीत, मानवान्, भवति ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

सर्वम्=सर्वात्मक-रूप ब्रह्म
आकाशे=आकाश विषे स्थित है
इति=ऐसी उपासना करनी योग्य है
तत्=वह ब्रह्म
प्रतिष्ठा=सबका अधिष्ठान है
+ यदि=अगर
इति=ऐसी
उपासीत=उपासना करे
+ ततः=तो
प्रतिष्ठावान्=स्वयं सर्वाधिष्ठान-रूप ब्रह्म
भवति=होता है
तत्=वह ब्रह्म
महः=महत्=सबसे श्रेष्ठ है

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

यदि=अगर
इति=ऐसी
उपासीत=उपासना करे
+ ततः=तो
महान्=स्वयं श्रेष्ठ
भवति=होता है
तत्=वह ब्रह्म
मनः=मन-रूप है
+ यदि=अगर
इति=ऐसी
उपासीत=उपासना करे
+ ततः=तो
मानवान्=मनन याने ईश्वर के आराधन में समर्थ
भवति=होता है ॥

भावार्थ ।

सर्वमिति । आकाश में सर्व-रूप करके ब्रह्म स्थित है, अर्थात् ब्रह्म से अभिन्न आकाश ही संपूर्ण जगत् का आश्रय है, ऐसी उपासना

करनी चाहिये, जो पुरुष इस प्रकार की उपासना करता है, वह स्वयं सर्वाधिष्ठान-रूप ब्रह्म होता है, वह ब्रह्म अति श्रेष्ठ है अगर ऐसी इसकी उपासना करे, तो वह स्वयम् अति श्रेष्ठ होता है, वह ब्रह्म मनन गुणवाला है इस प्रकार की जो उपासना करे, तो ईश्वर के मनन करने में भी सामर्थ्यवाला होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तन्नम इत्युपासीत नम्यन्तेऽस्मै कामाः तद्ब्रह्मेत्युपासीत ब्रह्मवान् भवति तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत पर्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, नमः, इति, उपासीत, नम्यन्ते, अस्मै, कामाः, तत्, ब्रह्म, इति, उपासीत, ब्रह्मवान्, भवति, तत्, ब्रह्मणः, परिमरः, इति, उपासीत, परि, एनम्, म्रियन्ते, द्विषन्तः, सपत्नाः, परि, ये, अप्रियाः, भ्रातृव्याः ॥

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
तत्	वह सर्व-भूत-स्थित ब्रह्म
नमः	नमस्कार करने-योग्य है
यदि	अगर
इति	ऐसा
उपासीत	उपासना करे
ततः	तो
अस्मै	उस उपासक के लिये
कामाः	विषय-भोग
नम्यन्ते	स्वतः उपस्थित होते हैं

अन्वयः ।	पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।
तत्	वह ब्रह्म
ब्रह्म	व्यापक-रूप है
+ यदि	अगर
इति	ऐसी
उपासीत	उपासना करे
+ ततः	तो
ब्रह्मवान्	स्वयं व्यापक-रूप
भवति	होता है
तत्	वह वायु-रूप
ब्रह्मणः	ब्रह्म का

परिमरः = परिमर है याने जिस में पाँच देवता विद्युत्, पृथिवी, चन्द्रमा, आदित्य और अग्नि लीन होते हैं सो वायु ब्रह्म का परिमर है

\+ यदि=अगर

इति=ऐसी

उपासीत=उपासना करे

ततः=तो

एनम्=उससे

विद्विषन्तः=द्वेष करते हुए

सपत्नाः=शत्रु

इति=आपही आप

परिम्रियन्ते=मरण को प्राप्त होते हैं

\+ च=और

अद्विषन्तोऽपि = द्वेष न करनेवाले भी

ये=जो

अप्रियाः=अप्रिय

भ्रातृव्याः=भ्रातृ-पुत्रादि हैं

ते च परिम्रियन्ते = वे भी आपही मरण को प्राप्त होते हैं ॥

भावार्थ ।

तन्नम इति । वह ब्रह्म नमस्कार करने-योग्य है, अगर ऐसी उपासना को करे, तो उस उपासक के आगे सब विषय स्वतः उपस्थित हो जाते हैं, वह ब्रह्म विराट्रूप व्यापक है, इस प्रकार की उपासना करे, तो वह स्वयम् व्यापक हो जाता है, वह ब्रह्म वायु गणवाला है, जो इस प्रकार की उपासना करे, उसके द्वेष करनेवाले और अद्वेष करनेवाले सब शत्रु मर जाते हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः स य एवं वित् अस्माल्लोकात्प्रेत्य एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य इमाँल्लोकान् कामान्नीकामरूप्यनुसञ्चरन् एतत्साम गायन्नास्ते ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, च, अयम्, पुरुषे, यः, च, असौ, आदित्ये, सः, एकः, सः, यः, एवं, वित्, अस्मात्, लोकात्, प्रेत्य, एतम्, अन्नमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रम्य, एतम्, प्राणमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रम्य, एतम्, मनोमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रम्य, एतम्, विज्ञानमयम्, आत्मानम् उपसंक्रम्य, एतम्, आनन्दमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रम्य, इमान्, लोकान्, कामान्नीकामरूपी, अनुसञ्चरन्, एतत्, साम, गायन्, आस्ते ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

यः=जो
सः=वह परमात्मा है
+ स एव=वही
अयम्=यह पुरुष है
+ च=और
यः=जो
पुरुषे=पुरुष विषे है
+ स एव=वही
असौ=इस
आदित्ये=सूर्य विषे है
सः=वह दोनों
एकः=एक ही है
यः=जो विद्वान्
एवम्=इस प्रकार
वित्=जानता है
सः=वह
अस्मात् लोकात्=इस लोक से
प्रेत्य=मर कर अर्थात् दृष्टि हटाकर

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

एतम् अन्नमयम् आत्मानम्=इस अन्नमय कोश को
उपसंक्रम्य=उल्लंघन करके
एतम् प्राणमयम् आत्मानम्=इस प्राणमय कोश को
उपसंक्रम्य=उल्लंघन करके
एतम् मनोमयम् आत्मानम्=इस मनोमय कोश को
उपसंक्रम्य=उल्लंघन करके
एतम् विज्ञानमयम् आत्मानम्=इस विज्ञानमय कोश को
उपसंक्रम्य=उल्लंघन करके
एतम् आनंदमयम् आत्मानम्=इस आनंदमय कोश को
उपसंक्रम्य=उल्लंघन करके
कामान्=सब कामनाओं को
+ उपसंक्रम्य=त्यागकर
इमान् लोकान्=उन्हीं लोकों में

निकामरूपी=स्वेच्छाचारी होकर
अनुसंचरन्=विचरता हुआ
एतत्=इस

साम गायन् आस्ते = { साम वेद का गायन निम्न प्रकार करता हुआ स्थिर होता है ॥

भावार्थ ।

स यश्चायमिति । जो यह आत्मा प्रत्येक शरीरों में वर्तमान है और जो आत्मा आदित्य-मण्डल में वर्तमान है, वे दोनों एक ही हैं, जो पुरुष इस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा के अभेद को जानता है, सो विद्वान् इस लोक और परलोक के विषय भोगों से उपराम होकर इस अन्नमय शरीर को, और इस अन्नमय के अन्तर प्राणमय शरीर को, और प्राणमय के अन्तर मनोमय शरीर को, और मनोमय शरीर के अन्तर विज्ञानमय शरीर को, और विज्ञानमय शरीर के अन्तर आनन्दमय शरीर को बाध करके अपनी इच्छा से विचरता हुआ इन भूरादि लोकों में सामवेद के गीत को इस प्रकार गाता हुआ फिरा करता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

हा३ वु हा३ वु हा३ वु अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् अहमन्नादो३ अहमन्नादो३ अहमन्नादः अहꣳ श्लोककृदहꣳ श्लोककृदहꣳ श्लोककृदहमस्मि प्रथमजा ऋता३स्य पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना३ भायि यो मा ददाति स इदेव मा३ वाः अहमन्नमहमन्नमदन्तमा३ द्मि अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां३ सुवर्णज्योतिः य एवं वेद इत्युपनिषद् ॥ ७ ॥

इति दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

इति तृतीया भृगुवल्ली समाप्ता ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

हा३ वु, हा३ वु, हा३ वु, अहम्, अन्नम्, अहम्, अन्नम्, अहम्, अन्नम्, अहम्, अन्नादः, अहम्, अन्नादः, अहम्, अन्नादः, अहम्, श्लोककृत्, अहम्, श्लोककृत्, अहम्, श्लोककृत्, अहम्, अस्मि, प्रथमजः, ऋता३, स्य, पूर्वम्, देवेभ्यः, अमृतस्य, ना३, भायि, यः, मा, ददाति, सः, इत्, एव, मा ३, वाः, अहम्, अन्नम्, अहम्, अन्नम्, अदन्तम्, आ ३ द्मि, अहम्, विश्वम्, भुवनम्, अभ्यभवाँ३, सुवर्णज्योतिः, यः, एवम्, वेद, इति, उपनिषद् ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

हा३वु=अहो !=बड़ा आश्चर्य है
हा३वु=अहो !=बड़ा आश्चर्य है
हा३वु=अहो !=बड़ा आश्चर्य है
अहमन्नम्=मैं अन्न हूँ
अहमन्नम्=मैं अन्न हूँ
अहमन्नम्=मैं अन्न हूँ
अहमन्नादः=मैं अन्न का भोक्ता हूँ
अहमन्नादः=मैं अन्न का भोक्ता हूँ
अहमन्नादः=मैं अन्न का भोक्ता हूँ
अहं श्लोककृत्=मैं कार्य-कारण-रूप हूँ
अहं श्लोककृत्=मैं कार्य-कारण-रूप हूँ
अहं श्लोककृत्=मैं कार्य-कारण-रूप हूँ
अहम्=मैं
ऋता३स्य=मूर्त-अमूर्त अर्थात् कार्य-कारण के
प्रथमजः=पूर्व उत्पन्न हुआ
+ अस्मि=हूँ

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

+ च=और
देवेभ्यः=इन्द्रियाभिमानी देवताओं से
+ अपि=भी
पूर्वम्=पहिले
+ जातोऽस्मि=उत्पन्न हुआ हूँ
+ च=और
अमृतस्य=अमृत का
ना३भायि=नाभि (मध्य-स्थान), अर्थात् निधान
अस्मि=मैं ही हूँ
+ च=और
यः=जो
मा=माम्=मुझ अन्न-रूप को
अन्नार्थिने=अन्नार्थी के लिये
ददाति=देता है
सः=वह
इत्=इति=ऐसे दान-धर्म से
एव=अवश्य

मा=माम्=मुझको
अवाः=अवति=रक्षा करता है
च=और
अन्नम्=अन्न को
+ अन्नार्थिने ऽदत्वा = अन्नार्थी के लिये न देकर
अन्नमदन्तम्=अन्न भक्षण करते हुए को
अहम्=मैं
आ३द्मि=अद्मि=भक्षण कर जाता हूँ
+ च=और
अहम्=मैं ही
सुवर्णज्योतिः=सूर्य इव = सूर्य की तरह प्रकाशमान होकर
विश्वम्=ब्रह्मा से तृणपर्यंत
भुवनम्=लोक को
अभिभवाँ३=अभिभवामि = तिरस्कार करता हूँ अर्थात् नाश कर देता हूँ
यः=जो
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है
च=और
यः=जो
एवं=इस प्रकार
वित्=जानता है
स एव=वही
इति उपनिषद्= इस प्रकार वेद के रहस्य को जानता है अर्थात् ब्रह्मज्ञानी होता है ॥

भावार्थ ।

हा इति । अब सामवेद के गायन के प्रकार को कहते हैं । "हा३ वु" और "हा३ वु" ये दोनों शब्द विस्मयार्थ के वाचक हैं, ब्रह्म का उपासक मस्त होकर कहता फिरता है, अद्वैतात्मा माया-मल से रहित मैं हूँ, मैं ही अन्न भोग्यरूप भी हूँ, और मैं ही अन्नाद भोक्तारूप भी हूँ, यही बड़ा आश्चर्य है, मैं ही देहादि अनेक इन्द्रियों के संघात का कर्ता हूँ, और मैं ही अचेतन-रूप शरीर इन्द्रियादिकों का संघात हूँ, यह ही महान् आश्चर्य है, मूर्त-अमूर्त-रूपी संपूर्ण जगत् का प्रथम उत्पन्न हिरण्यगर्भ-रूपी कर्ता भी मैं ही हूँ, और हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति के अनंतर इन्द्रादिक देवताओं से पूर्व उत्पन्न जो विराट्पुरुष है सो भी मैं ही हूँ, अर्थात् कार्य-कारण-रूप मैं ही हूँ, और मुमुक्षुओं को प्राप्तव्य जो कि अमृतत्व है वह भी मेरा ही

स्वरूप है, जो पुरुष मुझ अन्न-रूप को अन्नार्थियों के प्रति देता है सो अन्न-दाता मेरी रक्षा अन्न करके करता है, और वृद्धि को प्राप्त होता है, और जो पुरुष अन्नार्थियों के प्रति अन्न को न देकर आप अन्न को भक्षण करता है, उसको मैं भक्षण कर जाता हूँ, तात्पर्य यह है कि उपासक कहता है मैं ही अन्न हूँ, मैं ही अन्न का भक्षण करने वाला भी हूँ, मैं ही संपूर्ण विश्व का प्रकट करनेवाला हूँ, मैं ही संपूर्ण विश्व को प्रलय-काल में उपसंहार करके अपने में लय करलेता हूँ, फिर सृष्टि-समय मैं ही संपूर्ण जगत् को उत्पन्न करके उसको प्रकाश करता हूँ, यह सब आश्चर्य-रूपी कौतुक मेरा ही है, इन दो वल्लियों करके निरूपण किया परमात्मा का ज्ञान जो कोई और पुरुष भी पूर्वोक्त प्रकार से जानता है उसको भी यही फल मिल जाता है, याने पाँचों कोश-संबंधी शरीरों को उल्लंघन करके ब्रह्म-रूप हो जाता है ॥ ७ ॥

इति दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

इति तृतीया भृगुवल्ली समाप्ता ॥ ३ ॥

मूलम् ।

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

पदच्छेदः ।

सह, नौ, अवतु, सह, नौ, भुनक्तु, सह, वीर्यम्, करवावहै, तेजस्वि, नौ, अधीतम्, अस्तु, मा, विद्विषावहै, ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ॥

अन्वयः । पदार्थ-सहित सूक्ष्म भावार्थ ।

+ सः=वह ईश्वर

नौ=हम दोनों को अर्थात् गुरु और शिष्य को

सह=साथ

एव=ही

अवतु=रक्षा करे

नौ=हम दोनों को

सह एव=साथ ही

भुनक्तु=भोग प्राप्त करे

+ आवाम्=हम दोनों

सह=साथ

+ एव=ही

वीर्यम्=विद्या-दान और विद्या-ग्रहण सामर्थ्य को

करवावहै=प्राप्त होवें

नौ=हम दोनों का

अधीतम्=पढ़ा हुआ

तेजस्वि=अर्थ-ज्ञान योग्य अर्थात् सफल

अस्तु=होवे

+ आवाम्=हम दोनों

मा विद्विषावहै=पठन-पाठन में प्रमादरूप द्वेष को न प्राप्त होवें ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

इति तैत्तिरीयोपनिषत्सटीका सम्पूर्णा ।

शुभमस्तु ।



अनुवादक की अनूदित अन्यान्य पुस्तकें ।